अग्निशिखा
अखिल भारतीय पत्रिका
अप्रैल २०२३

दोहरे अवतार की लीला

विषय-सूची

दोहरे अवतार की लीला

सम्पादकीय		३
श्रीअरविन्द का आवास		५
श्रीअरविन्द की उपस्थिति		११
नवीन तथा बेहतर जगत्		३३
'पुरोधा' : दैनन्दिनी		३४
'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : स्वप्न और अन्तर्दर्शन	नवजातजी	३७
एक शिष्या के साथ श्रीमाँ का पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	४०
मातृ-वन्दना (दो लघु गीत)	हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय	४४
प्रभु की महिमा हो तो ऐसी...	वन्दना	४५
झुँझुनू की सूचना		४९

अग्निशिखा

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मातैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

सम्पादिका : वन्दना

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

सम्पादकीय : अवतार की लीला उनके बाहरी पार्थिव दृश्य से निवृत्त हो जाने के बाद भी जारी रहती है। वास्तव में तब वह अधिक शक्ति तथा संवेग से परिपूर्ण हो जाती है। जड़-भौतिक में किसी विशेष कार्य को सम्पन्न करने के बाद जब अवतार अपने भौतिक शरीर से मुक्त हो जाते हैं तब भी उनके द्वारा उतारी गयी 'चेतना' तथा 'शक्ति' अधिक सशक्त तथा समर्थ रूप में सम्पूर्ण विश्व में कार्य करने लगती हैं। न केवल इतना ही, उनका दिव्यतामय मानव पार्थिव व्यक्तित्व पृथ्वी की तथा उन सबकी मदद करता ही रहता है जो श्रद्धा के साथ उनकी ओर खुलते हैं और उस 'भागवत कार्य' के सम्पन्न होने के लिए उन पर निर्भर रहते हैं जिसको पूरा करने के लिए ही भागवत आविर्भाव होता है।

यह अंक श्रीअरविन्द की उस लीला को समर्पित है जो आज भी चल रही है और जिसे श्रीमाँ ने उद्घाटित किया है।

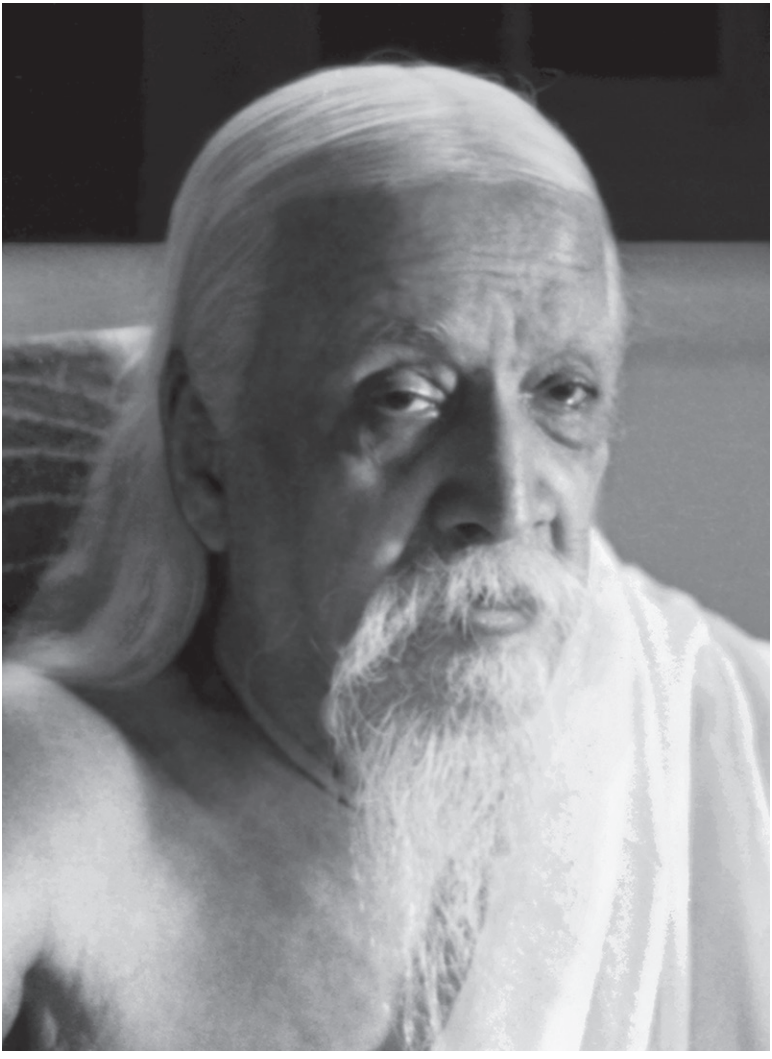

श्रीअरविन्द निरन्तर हमारे साथ हैं और जो लोग उन्हें देखने और सुनने के लिए तैयार हैं उनके सम्मुख अपने-आपको प्रकट करते हैं।

'श्रीमातृवाणी', *खण्ड १३, पृ. ११*

श्रीअरविन्द का आवास

चैत्य सत्ता की कड़ी

जब श्रीअरविन्द ने शरीर त्यागा तो मुझे मालूम था कि अब मुझे चैत्य सत्ता की कड़ी को काटना होगा, नहीं तो मैं उनके साथ ही चली जाती; क्योंकि जैसी कि मैंने उनसे प्रतिज्ञा की थी कि मैं यहीं रह कर उनके कार्य को जारी रखूँगी, इसलिए मुझे यह करना ही पड़ा: मैंने शाब्दिक रूप में चैत्य के मुँह पर दरवाज़ा बन्द कर दिया और कहा, "फ़िलहाल, तुम्हारा अभी अस्तित्व नहीं है।" ऐसा दस सालों तक रहा, क्योंकि मैंने एकदम से सम्बन्ध काट लिया था। दस सालों के बाद, धीमे-धीमे चैत्य का वह द्वार फिर से खुलने लगा—यह भयभीत करने वाला था। लेकिन मैं इसके लिए तैयार थी। वह दोबारा खुलने लगा। लेकिन जब उद्घाटन की वह अनुभूति मुझे हुई तो मैं आश्चर्यचकित रह गयी; मुझे ताज्जुब हुआ कि ऐसा हुआ क्यों, मुझे वह आदेश क्यों मिला और मुझे वैसा क्यों करना पड़ा? और जब शरीर के साथ भागवत प्रेम का वह तादात्म्य हो गया (वह कुछ दिन पहले हुआ), जब वह अनुभूति सम्पन्न हो गयी तब स्वयं कोषाणुओं को भी समान अनुभूति प्राप्त हुई, मानों उन्हें भी इसे करने का आदेश मिला था। और तब मेरी समझ में आ गया कि क्यों सम्पूर्ण भौतिक जगत् बन्द हो गया था; ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि भौतिक को उस अनुभूति (भागवत प्रेम की अनुभूति) के बिना जीना था। स्वाभाविक रूप से मेरी समझ में यह बात भी आ गयी कि मुझे अपने चैत्य पर ताला क्यों लगाना पड़ा, क्योंकि... क्योंकि उसे खुला रखना असम्भव था, श्रीअरविन्द की बाह्य अभिव्यक्ति के बिना मेरा अस्तित्व में बने रहना असम्भव था। हाँ, तब कोषाणुओं ने समझ लिया कि भागवत 'प्रेम' की उपस्थिति के बिना ही उन्हें अपने जीवन को बनाये रखना और जीना होगा। और जगत् में ऐसा ही घटित हुआ। द्वार बन्द हो गये; जड़-भौतिक जगत् की रचना तथा विकास के लिए यह अनिवार्य था।

लेकिन अब हम शायद समीप आ रहे हैं... हम उस काल के क़रीब आ रहे हैं जब सभी द्वारों को खुलने की अनुमति पुनः मिल जायेगी।

२७ जुलाई १९६६ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

क्या मैंने अपनी उस दिन की अनुभूति के बारे में तुमको बतलाया कि अचानक सूक्ष्म-भौतिक में मैंने अपने-आपको श्रीअरविन्द के निवास पर पाया? हाँ तो, यह ऐसा था मानों मैंने एक पग आगे बढ़ाया और मैं भौतिक से भी अधिक ठोस जगत् में पहुँच गयी—इस अर्थ में अधिक ठोस कि वहाँ की वस्तुओं में सत्य अधिक था। मैंने वहाँ श्रीअरविन्द के साथ काफ़ी समय व्यतीत किया और फिर, जब वह अनुभूति समाप्त हो गयी तो मैंने एक और क़दम उठाया और अपने-आपको वापस यहाँ पाया... मैं कुछ विस्मयान्वित हो गयी थी। मुझे यहाँ अपनी स्थिति में वापस आने में कुछ समय लगा, क्योंकि तब यह जगत् मुझे अवास्तविक लग रहा था, वह दूसरा नहीं।

बस इतना ही करना होता है—एक क़दम आगे बढ़ाओ और तुम दूसरे कमरे में चले जाते हो। और जब तुम अपनी अन्तरात्मा में जीते हो तो निरन्तरता बनी रहती है, क्योंकि अन्तरात्मा याद रखती है। उसे सब कुछ याद रहता है, उसे सभी घटनाएँ, यहाँ तक कि बाहरी घटनाएँ भी—जिन-जिन क्रिया-कलापों में उसने हिस्सा लिया हो—सब याद रहती हैं। तो यह सतत, अविच्छिन्न क्रिया होती है, यहाँ और वहाँ, एक कमरे से दूसरे कमरे में, एक घर से दूसरे में, एक जीवन से दूसरे जीवन में आना-जाना लगा ही रहता है।

२४ जून १९६१ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

१५ अगस्त के कुछ पहले ही मुझे एक विलक्षण अनुभूति हुई... पहली बार आन्तरिक सत्ताओं से गुज़रे बिना, अतिमानसिक प्रकाश ने सीधा मेरे शरीर में प्रवेश किया। वह मेरे पैरों से अन्दर आया (लाल तथा सुनहरे रंग का वह प्रकाश—अद्‌भुत, ऊष्माभरा, तीव्र था), और वह ऊपर, निरन्तर ऊपर चढ़ने लगा। और जैसे-जैसे वह चढ़ता गया, बुख़ार भी उठने लगा क्योंकि शरीर इतनी तीव्रता का आदी नहीं है। और जैसे ही यह प्रकाश सिर के समीप आया, मुझे लगा कि मैं फट जाऊँगी और यह कि इस अनुभूति को बन्द होना ही होगा। लेकिन, तभी, मुझे 'अचञ्चलता' तथा 'शान्ति' को अपने अन्दर उतारने, इस शारीर चेतना और इन सभी कोषाणुओं को विस्तृत करने का एकदम स्पष्ट निर्देश मिला ताकि वे

अतिमानसिक प्रकाश को अपने अन्दर धारण कर सकें। अतः मैं विस्तृत होने लगी और जैसे-जैसे प्रकाश ऊपर उठ रहा था, मैं विस्तार तथा निष्कम्प शान्ति को अपने अन्दर उतारने लगी। और अचानक, क्षण-भर की बेहोशी ने मुझे आ घेरा।

मैंने स्वयं को दूसरे ही जगत् में पाया, लेकिन वह यहाँ से दूर नहीं था (मैं पूरी-पूरी समाधि में नहीं थी)। वह जगत् प्रायः भौतिक जगत् की ही भाँति वास्तविक था। वहाँ कमरे थे—उस शय्या के साथ श्रीअरविन्द का कमरा था जहाँ वे आराम करते थे—और वे वहाँ रह रहे थे, वे सारे समय वहीं रहते थे : वही उनका निवास-स्थान था। यहाँ तक कि मेरा भी कमरा वहाँ था, एक बड़े से शीशे के साथ, जैसा कि यहाँ मेरे कमरे में है, कंघे इत्यादि सब तरह की चीज़ें थीं। और ये चीज़ें अपने तत्त्व तथा अपनी बनावट में प्रायः भौतिक जगत् के जितनी ही ठोस थीं, लेकिन उनसे उनका अपना प्रकाश छिटक रहा था। वह प्रकाश पारदर्शक, चमकदार नहीं बल्कि स्वयं-प्रकाशित था। विभिन्न वस्तुओं तथा उन कमरों की सामग्रियों में वैसी समान अपारदर्शकता या धुँधलापन नहीं था जैसा यहाँ की भौतिक चीज़ों में होता है, वे उस तरह शुष्क और कठोर नहीं थीं जैसी शुष्कता और कठोरता हमें यहाँ दिखायी देती है।

भव्य, अलौकिक सौन्दर्यमय श्रीअरविन्द

और श्रीअरविन्द वहाँ विराजमान थे—भव्य, अलौकिक सौन्दर्य के साथ। पहले की तरह उनके रेशम के से सुन्दर बाल लहरा रहे थे। सब कुछ इतना जीवन्त, इतना सम्पन्न था—उन्हें कुछ खाद्य सामग्री भी परोसी गयी। मैं वहाँ घण्टे-भर रही (मैंने पहले और बाद में घड़ी देखी थी)। मैंने श्रीअरविन्द से बातचीत की, क्योंकि कुछ चीज़ों की चरितार्थता के विषय में मुझे उनसे कुछ प्रश्न पूछने थे कि वे चीज़ें किस तरह से सम्पन्न होंगी। वे कुछ बोले नहीं। उन्होंने शान्त भाव से मेरी बातें सुनीं और मुझे ऐसे देखा मानों मेरे द्वारा कहे सारे शब्द व्यर्थ थे : वे हर एक चीज़ तुरन्त समझ गये। और उन्होंने मुझे एक संकेत तथा अपने चेहरे की दो भंगिमाओं द्वारा उत्तर दे दिया, एक अप्रत्याशित संकेत जिसका मेरे विचार के साथ कोई मेल नहीं था; उदाहरण के लिए, उन्होंने तीन कंघे उठा लिये जो शीशे के पास

रखे थे (वैसे ही कंघे जिनका मैं यहाँ उपयोग करती हूँ, लेकिन वे कुछ बड़े थे) और तीनों उन्होंने अपने बालों में लगा लिये। एक बीच के बालों को उठा कर उनसे अटका दिया, और बाक़ी दोनों दायीं तथा बायीं तरफ़ वैसे ही बालों को उठा कर उनमें लगा दिये, मानों अपने सारे बालों को बाकर उन्होंने अपने सिर के ऊपर एक मुकुट बना दिया। और मैं तुरन्त समझ गयी कि इससे उनका अर्थ था कि वे मेरी बातों का अनुमोदन कर रहे हैं, मानों कह रहे हों: "देखो, चीज़ों के बारे में मैं तुम्हारी धारणाओं को स्वीकार करता हूँ और उन विचारों को बाकर मैं उन्हें सिर-आँखों पर रख रहा हूँ; यही मेरी भी इच्छा है।" बहरहाल, मैं वहाँ एक घण्टे तक रही।

सत्य का संसार

देखो, ऐसा नहीं है कि 'सत्य' के इस संसार की रचना 'कुछ नहीं' से करनी है: वह पूरी तरह से तैयार है, वह यहाँ उपस्थित है, वह हमारे वर्तमान जगत् के नीचे अस्तर की तरह लगा हुआ है। सब कुछ यहाँ है, सब कुछ।

मैं इस अवस्था में पूरे दो दिन रही, दो दिन सम्पूर्ण परमानन्द में। और सारे समय श्रीअरविन्द मेरे साथ थे, सारे समय—जब मैं चलती, वे मेरे साथ चलते, जब मैं बैठती, वे मेरे साथ बैठते। १५ अगस्त के रोज़ भी, दर्शन के समय वे निरन्तर मेरे साथ ही थे। लेकिन कौन यह समझ पाया? बहुत कम—एक या दो ने कुछ अनुभव किया। लेकिन किसने देखा?—किसी ने नहीं।

और मैंने सभी लोगों को श्रीअरविन्द को दिखलाया, यह सारा कार्यक्षेत्र दिखलाया और पूछा कि यह दूसरा संसार, सच्चा जगत् जो यहाँ हमारे इतनी पास है, वह हमारे इस असत्य के जगत् पर कब अधिकार करेगा? *तैयार नहीं है। यह जगत् तैयार नहीं है*—यह था उनका उत्तर।

श्रीअरविन्द ने मुझे इस परम आनन्द के दो दिन प्रदान किये, लेकिन, दूसरे दिन के अन्त में मैं समझ गयी कि मैं यहाँ रहना जारी नहीं रख सकती क्योंकि मेरा वहाँ का काम आगे नहीं बढ़ रहा है। पृथ्वी का कार्य सशरीर होना चाहिये; उपलब्धि यहाँ इस भौतिक जगत् में प्राप्त करनी होगी, अन्यथा वह सम्पूर्ण न होगी। अतः मैं उस जगत् से यहाँ लौट आयी और

यहाँ अपने काम में जुट गयी।

फिर भी, इस जगत् से उस जगत् में जाना, यानी उसको यहाँ का सच्चा जगत् बना देना, यहाँ उतार लाना सचमुच चुटकी बजाने-भर का काम है, या फिर अपने आन्तरिक मनोभाव का ज़रा-सा पलटाव है। कैसे कहूँ?... सामान्य चेतना के लिए यह बहुत ही सूक्ष्म है : बहुत ही ज़रा-सा आन्तरिक खिसकाव काफ़ी है, उससे सब कुछ बदल सकता है।

६ अक्तूबर १९५९ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

करुणा और कृपा

ओह, अभी उस दिन किसी ने मुझसे २४ नवम्बर के दर्शन के सन्देश के बारे में पूछा, ("ये तीन शक्तियाँ धरती के जीवन पर शासन करती हैं : १–वैश्व विधान, कर्म का विधान या फिर और कुछ; २–भागवत करुणा जो विधान के जाल के अन्दर से जितने लोगों तक पहुँच पाती है उतने लोगों पर कार्य करती और उन्हें उनका सुअवसर प्रदान करती है; ३–भागवत कृपा जो अधिक हिसाब किये बिना कार्य करती है पर साथ ही दूसरों की अपेक्षा अधिक अदम्य रूप से कार्य करती है"—श्रीअरविन्द) और श्रीअरविन्द ने मुझे उत्तर दिया था। वह कितना रुचिकर था! मैंने अचानक कुछ देखा। जब वे बोल रहे थे तो जो घटा वह सचमुच अद्‌भुत था। मैंने 'करुणा' और 'कृपा' को देखा, "विधान" को देखा और यह भी देखा कि 'करुणा' किस प्रकार सब पर—बिना किसी भेदभाव और बिना किसी शर्त के—सभी व्यक्तियों पर और सभी चीज़ों पर क्रिया करती है और किस भाँति वह 'परम करुणा' उन्हें उस अवस्था में ले आती है जिसमें वे भागवत 'कृपा' को ग्रहण कर सकते हैं। मुझे यह अद्‌भुत प्रतीत हुआ।

मुझे यह अनुभूति हुई : मैंने इस 'परम करुणा' को संसार के मायाजाल में क्रिया करते देखा और अनुभव किया, और यह देखा कि किस तरह 'परम कृपा' सर्वशक्तिशालिनी है, अर्थात्, उसके सामने संसार का "विधान" बाधा के रूप में कभी नहीं ठहर सकता। मैंने इस 'करुणा' को सबका स्पर्श करते देखा और देखा कि वह 'परम करुणा' प्रत्येक को उसका अवसर प्रदान कर रही थी; तब मेरी समझ में आया कि श्रीअरविन्द के इस कथन से "वह प्रत्येक को उसका अवसर प्रदान करती है" उनका क्या आशय

था—अर्थात् वह 'करुणा', वह 'कृपा' बिना किसी भेदभाव के, बिना किसी शर्त, बिना किसी पसन्द, नापसन्द के, *सभी को* समान अवसर देती है। अतः, इस 'करुणा' का परिणाम होता है कि वह धरतीवासियों को 'परम कृपा' के बारे में जाग्रत् कर देती है ताकि वे ठोस रूप से यह अनुभव कर सकें कि संसार में 'भागवत कृपा' के जैसी वस्तु उपस्थित है। और जो कोई उसकी अभीप्सा करे, उस पर विश्वास रखे, 'कृपा' तुरन्त उस पर क्रिया करती है—वैसे तो वह संसार में सारे समय क्रियारत रहती है, लेकिन श्रद्धा के साथ वह पूरी तरह से प्रभावकारी बन जाती है।

यह सब इतना स्पष्ट, इतना यथार्थ था! यह एक नयी अनुभूति, एक अन्तर्दर्शन की तरह था। और स्वयं श्रीअरविन्द इस 'परम करुणा' की साक्षात् अभिव्यक्ति थे... वह उनकी आँखों में देखी जा सकती थी, निस्सन्देह, उनकी आँखें 'करुणा' से भरपूर थीं। उस अन्तर्दर्शन में मैंने जाना कि सचमुच यह 'परम करुणा' क्या है...

उन्होंने कहीं और भी लिखा है : "यह बहुत ही विरल है कि 'भागवत कृपा' किसी से मुँह फेर ले, लेकिन कई उससे मुँह मोड़ लेते हैं—मनुष्य 'भागवत कृपा' से मुँह मोड़ लेते हैं।" मुझे ठीक-ठीक उनके शब्द याद नहीं हैं, लेकिन मुझे लगता है कि उन्होंने 'विकृत' शब्द का प्रयोग किया था। यह अनुभव भी एकदम जीवन्त था कि 'कृपा' मनुष्यों का साथ नहीं छोड़ रही, एकदम नहीं (वह कृपा तो हमेशा सक्रिय होती है), लेकिन मनुष्य टेढ़े-मेढ़े, विकृत होते हैं...

... मनुष्य हमेशा स्वयं अपने ऊपर ही झुका रहता है। यानी वह अपनी शक्ति और क्रिया में सीधा आगे ही आगे की ओर बढ़ने की जगह, अपने ही अहं के चारों ओर कुण्डली मारे रहता है, हर तरह के अलवेटों और मरोड़ों में फँसा रहता है और इससे उसके चारों तरफ़ के स्पन्दन भी विकारयुक्त हो जाते हैं; मानव स्वयं ही टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता चुनता है (टेढ़ा-मेढ़ा, विकृति—ये ही शब्द मेरे मस्तिष्क में आ रहे हैं)। सीधा होने की जगह मनुष्य विकृत है। और अगर वह अपने विकार के कारण 'परम कृपा' को अपने अन्दर प्रवेश ही नहीं करने दे तो भला 'कृपा' क्या करे!! वह प्रभावकारी कैसे हो सकती है भला?

७ दिसम्बर १९६६ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

श्रीअरविन्द की उपस्थिति

समाधि पर श्रीअरविन्द की उपस्थिति

अगर कभी कोई चीज़ तुम्हें बेचैन करे या तुम किसी कठिनाई में हो और तुम्हें पता नहीं कि क्या करना चाहिये तो तुरन्त अपने-आपको शान्त कर लो और अन्तर्मुख हो जाओ। इसका यह अर्थ है कि तुम अपने अन्दर चले जाओ और एकदम निष्कपट रूप से अपनी आन्तरिक सत्ता, अपनी चैत्य सत्ता से पूछो, और तुम्हें उत्तर मिल जायेगा,—एकदम स्पष्ट और ठीक-ठीक उत्तर। वह तुम्हें बतला देगी कि क्या करना चाहिये। वह निश्चित रूप से तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेगी।...

एक और भी तरीक़ा है जो बहुत ही कारगर है और जब-जब तुम उसे अपनाओगे, ज़रूर सफल होओगे। अगर तुम कठिनाई में हो या कोई उत्तर पाना चाहते हो, वह कुछ भी हो सकता है, या फिर तुम्हें बेचैनी हो रही हो या कोई चीज़ तुम्हें क्षुब्ध कर रही हो, या फिर तुम कोई ग़लती कर बैठे जिससे तुम परेशान हो रहे हो,—मान लो तुम्हें ग़ुस्सा आ गया हो और तुम अप्रसन्न हो गये, कोई बहुत ही नगण्य-सी एकदम से साधारण, व्यर्थ सी चीज़, यहाँ तक कि तुम्हें अपनी नाराज़गी की वजह भी पता न हो, अगर कोई चीज़ ठीक नहीं है, जैसी कि होनी चाहिये वैसी नहीं है,— उस समय अगर तुम अपनी इस अप्रसन्न अवस्था से पिण्ड छुड़ाना चाहो तो सीधे समाधि पर आ जाओ, और समाधि पर अपना माथा टेक कर, बिना किसी हिचक, बिना किसी संशय के वह सब श्रीअरविन्द से निस्संकोच कह दो जो तुम कहना चाहते हो, ठीक वैसे ही जैसे तुम मेरे पास आकर कहते हो—और कितनी ही बार तुमने देखा है कि मुझे बताते ही कैसे तुम्हारी परेशानियाँ, तुरन्त, चुटकी बजाते ही एकदम से ग़ायब हो गयीं। तुमने उनसे इसलिए पीछा छुड़ा लिया क्योंकि मैंने उन्हें खदेड़ दिया। और तब तुमने अपने-आपको इन नकारात्मक, यहाँ तक कि हानिकारक रचनाओं से भी मुक्त और स्वयं को एकदम से हलका महसूस किया क्योंकि मैंने तुम्हारी पीठ से वह बोझा उतार दिया जिसे लिये-लिये तुम फिर रहे थे, और तुम हँसी-ख़ुशी वापस गये। याद है तुम्हें? कितनी, कितनी ही बार तुमने मुझसे यह कहा है।

जी माँ, बहुत, बहुत बार।

उसी तरह, तुम्हें 'उनसे' (श्रीअरविन्द से) कहना चाहिये; इस तरह, तुम्हें अपना सिर समाधि पर टिकाना चाहिये *(माँ अपना सिर नवाती हैं)* और 'उनकी' शाश्वत उपस्थिति को अनुभव करना चाहिये—समाधि पर तुम उनसे तुम्हारी कठिनाइयों से पीछा छुड़ाने के लिए कहो। या इस तरह तुम एक प्रार्थना भेजो, *(श्रीमाँ अपना हाथ हृदय से ऊपर की ओर ले जाती हैं)* लेकिन यह करो पूरी-पूरी सच्चाई के साथ, और अपनी एकाग्रता को अपनी सत्ता की गहनतम गहराई में ले आओ। मुझे विश्वास है कि वे तुम्हारी प्रार्थना सुनेंगे और अवश्य ही तुम्हें उत्तर देंगे। निस्सन्देह, अब तुम श्रीअरविन्द के साथ आसानी से सम्पर्क साध सकते हो। कइयों ने उनके साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिया है और वे अपने प्रश्नों के उत्तर 'उनसे' पा लेते हैं। वे अब हमारी पहुँच में अधिक हैं और अब वे यहाँ बहुत ज़्यादा सक्रिय हैं। हाँ, तो समझ रहे हो न, इस तरह तुम्हें प्रतीक्षा नहीं करनी होगी—पहले तुम मुझे सूचना दोगे, फिर मुझे सुविधाजनक तारीख़, सुनिश्चित समय देखना होगा और फिर यह भी देखना होगा कि मेरे पास समय है या नहीं, ताकि मैं तुम्हारी बातें सुन सकूँ, तुम्हें उत्तर दे सकूँ। उत्तर पाने के पहले तुम्हें एक पूरी प्रक्रिया से गुज़रना होगा। यह लम्बी प्रक्रिया है, इसमें बहुत समय लगता है और सबसे ज़्यादा तो तुम्हारे अन्दर प्रतीक्षा करने का सब्र होना चाहिये।... लेकिन यह तरीक़ा सुविधाजनक है, अधिक सीधा और तुम्हारी पहुँच में अधिक है। किसी भी समय तुम पूछ सकते हो। अपना उत्तर पाने के लिए तुम्हें बस समाधि पर आना होगा।

अगर कुछ सही नहीं हो रहा तो तुम उसका कारण ज़रूर जानना चाहोगे, या अगर तुम किसी कमज़ोरी से पीछा छुड़ाना, नीरोग होना, अन्दर की सफ़ाई करना या फिर पवित्र होने के लिए किसी कठिनाई को निकाल बाहर करना चाहो तो—किसी भी चीज़, किसी भी जवाब के लिए श्रीअरविन्द के पास समाधि पर आओ और तुम्हें जवाब मिल जायेगा। न केवल उनका जवाब बल्कि उनके आशीर्वाद, उनकी करुणा, उनकी शान्ति और उनकी ज्योति भी प्राप्त होंगी। उनका सर्वशक्तिशाली प्रेम तुम पर हावी हो जायेगा, उससे तुम सराबोर हो जाओगे। एक बार तुम अपने-आपको

उनकी बाँहों में बस छोड़ भर दो, सभी दुर्घटनाओं से तुम्हें बचा लिया जायेगा। ऐसा ही होता है—यह उनका प्रभाव है। वे उन सभी के सम्मुख स्वयं को प्रकट करते हैं जो सरल-सीधे हैं, सच्चे-निष्कपट और विनम्र हैं। वे यहाँ उपस्थित हैं, सम्पूर्ण सचेतन रूप में हैं, और वे संसार की सभी गतियों का सञ्चालन करते हैं।

Blessings of the Grace पृ. ११९-२१

श्रीअरविन्द उत्तर देते हैं

जानते हो, जब श्रीअरविन्द सशरीर थे तब लोग कहा करते थे कि वे बहुत दूरस्थ, अलग-थलग रहते हैं, हम मनुष्यों की पहुँच के परे हैं, कि वे यहाँ साधकों के मामलों में रुचि नहीं रखते, अपनी ही साधना में लीन रहते हैं। लेकिन यह बात एकदम ग़लत है, क्योंकि वास्तव में धरती को ऊपर उठाने और उसे अतिमानसिक जगत् के आविर्भाव के लिए तैयार करने के अपने कार्य की बजाय, वे रात-पर-रात साधकों की चिट्ठियों के अम्बार का जवाब दिया करते थे। उनकी प्रगति का पूरा लेखा-जोखा रखते थे और उनके हर मामले में अपना पूर्ण योगदान देते थे। और साथ ही उन्होंने चीज़ों की इस तरह व्यवस्था कर दी थी कि साधक सीधा मेरे साथ सम्पर्क साध कर मेरे आशीर्वाद पा सकते थे, भौतिक स्तर के साथ-साथ साधना में आन्तरिक रूप से भी सहायता पा सकते थे। मेरे द्वारा ही साधक चेतना की ऊँचाइयों को उपलब्ध कर, अतिमानस की ओर बढ़ सके, हर प्रकार की बाधा को पार कर सके। उस समय श्रीअरविन्द उन विभिन्न लोकों, विविध शक्तियों और चेतना के असंख्य स्तरों पर नियन्त्रण पाने, न केवल उनको जीतने बल्कि उन्हें अपने अधीन करने में तल्लीन थे जो उनका विरोध कर रहे थे और हमारे कार्य के रास्ते में बाधा बने खड़े थे। तभी अतिमानस की खोज में बढ़ा जा सका। उस समय सभी दैनन्दिन मामले मेरे सुपुर्द कर दिये गये थे और साथ ही आश्रम की पूरी व्यवस्था और व्यक्तिगत प्रगति तथा सामूहिक योग का सारा कार्यभार मुझ पर था। उन दिनों उनके पास लोगों से मिलने या उनकी शिकायतें इत्यादि सुनने का समय न के बराबर था। लेकिन अब उन्होंने अपने-आपको सार्वभौम बना लिया है, वे बहुत विशाल और बहुत घनिष्ठ हो गये हैं। प्रत्येक के

साथ उनका एक ऐसा निकट का सम्बन्ध जुड़ गया है और उनका ऐसा सीधा प्रभाव हम पर पड़ रहा है कि हर एक 'उन' तक पहुँच सकता है। Blessings of the Grace पृ. १२१-२२

जीवन्त आश्वासन

यह अपूर्व है। समाधि के चारों ओर 'उनकी' उपस्थिति स्पन्दित हो रही है, वह बहुत ठोस है। और 'उनका' प्रभाव हमारी केन्द्रीय सत्ता को भेद कर उसका स्पर्श करता है और हमारी चेतना को आध्यात्मिक जीवन की ओर जाग्रत् कर देता है। यहाँ तक कि नास्तिक, अविश्वासी, दुर्भावनावाले व्यक्ति, जो मात्र उत्सुकतावश समाधि देखने आते हैं, वे भी एक रहस्यमय कीमिया से आश्चर्यान्वित और एक आन्तरिक शान्ति से अभिभूत हो लौटते हैं, क्योंकि वहाँ वे अपनी शान्ति तथा अपनी करुणा की निरन्तर बौछार करते रहते हैं। जब हम समाधि पर जाते हैं तो इस सबसे सराबोर हो लौटते हैं। यह उनकी शक्ति तथा उनकी उपस्थिति की अभिभूत करने वाली अविश्वसनीय क्रिया है।...

हमारे अन्दर की दिव्य सम्भावना के वे जीवन्त आश्वासन हैं, उन 'देवता' की प्रतिज्ञा हैं जो भागवत प्रकाश तथा भागवत शक्ति के साथ स्वयं को प्रसारित कर रहे हैं, जो हमें क्रमशः भागवत अभिव्यक्ति की ओर लिये जा रहे हैं। इसी कारण यहाँ का सारा वातावरण एक दिव्य तथा उदात्त 'शान्ति' से भरा हुआ है, समझ रहे हो? वहाँ 'वे' ही हैं—दिव्य शरीर में हैं—स्वयं वे दिव्यभावापन्न हैं, वे ही समस्त मानवता के प्रतीक-रूप हैं, उन्होंने ही अपने प्रयास, अपनी तपस्या तथा अपनी साधना द्वारा अपने शरीर को भव्य बना लिया है। जो उपलब्धियाँ तथा अनुभूतियाँ उन्हें हुई हैं उन्हें यौगिक प्रयास द्वारा उन्होंने अपने शरीर में सञ्चित कर लिया है और एक रूपान्तरकारी शक्ति से अपना शरीर आवेष्टित कर दिया है। उनका शरीर उफनती हुई शक्ति तथा प्रकाश के द्वारा ऊर्जस्वी रूप में गतिशील है; ये चीज़ें समस्त वातावरण में व्याप्त हैं। चारों तरफ़ 'उन्हीं' की उपस्थिति है। यह सब इसी कारण टिका हुआ है क्योंकि यह अतिमानसिक शक्ति है जिसका कभी ह्रास नहीं होता। इसका ह्रास हो ही नहीं सकता।

जब लोग समाधि का चक्कर लगाते हैं तब वे इसी को आत्मसात् करते

हैं। न जानते हुए भी वे 'उन्हीं' के प्रेम में स्नान करते हैं और उन्हें इसका पता ही नहीं होता कि समाधि के निकट आने पर वे इतने भौचक्के क्यों रह जाते हैं। यह विस्मयकारी है! जब वे समाधि का स्पर्श करते हैं तो आश्चर्यचकित हो जाते हैं क्योंकि उसके चारों तरफ़ जो शक्ति क्रियारत है वह उनकी तथाकथित धार्मिक भावनाओं को भूमिसात् कर देती है, उनके उन आवेगों को चूर-चूर कर देती है जो स्वर्गों की ओर उड़ान भरने का शोर मचाते हैं और उन्हें ऐसी 'वास्तविकता' के आगे ला खड़ा करती है जो उनकी समझ के परे होती है। वे सत्य के उस विलक्षण चमत्कार से जड़ीभूत हो जाते हैं जो यहाँ अभिव्यक्त हो रहा है। जो उद्घाटित हैं और इससे जाग्रत् हो जाते हैं वे अपनी सत्ता को 'चार्ज' करने तथा अपनी सत्ता में यहाँ के वातावरण में व्याप्त इस 'शान्ति' को आत्मसात् करने के लिए लौट-लौट कर यहाँ आते हैं। 'उनकी' उपस्थिति इतनी ठोस और इतनी जीवन्त है—मानों एक सचेतन विशालता है जो इस वातावरण पर पूरी तरह से छा गयी है और इसमें अपने स्पन्दन भर रही है। मैं देख रही हूँ कि कितना सुखद है इन प्रकाशों और रंगों में तैरना, पकड़ में न आने वाले हर्ष के सौन्दर्य, पवित्रता तथा उपस्थिति में स्नान करना, जो यद्यपि दुर्ग्राह्य हैं फिर भी प्रायः भौतिक भी कहे जा सकते हैं और जो ऐसी मधुरता को साथ लिये चलते हैं जो अभी तक जगत् के लिए अज्ञात है। मुझे लगता है कि एक ऐसा हृदय जो दत्तचित्त हो, उत्कटता के साथ प्रभु को पाने की अभीप्सा करे, अगर वह समाधि के सम्मुख खड़ा होकर उनके परमानन्द के सिवाय और किसी भी चीज़ की कामना न करे तो वह आनन्द के एक ऐसे लोक में उठा दिया जायेगा जहाँ सर्व-समर्थकारी स्वर्गों या धरती ने अब तक जितने आनन्द का अनुभव किया है उससे कहीं अधिक सुखद तथा उच्चतर आनन्द बसता है।

Blessings of the Grace पृ. १२२-२५

उनकी भव्य उपस्थिति

उनके शिष्य तथा वे सभी जो श्रीअरविन्द के साथ अपनी चेतना को एकात्म करने की उत्कट अभीप्सा करते हैं—श्रीअरविन्द जो अपनी प्रतापी उपस्थिति से इस स्थान पर प्रभुत्व रखते हैं—वे अभीप्सु 'उनकी'

ऐश्वर्यशालिनी उपस्थिति की महानता का उतने ही ठोस रूप में अनुभव करते हैं जिस प्रकार तुम मुझे यहाँ देखते हो। और जो लोग उनके साथ सम्पर्क साधना चाहते हैं वे निश्चित रूप से उनसे अपने प्रश्नों के उत्तर पा लेते हैं। वे यहाँ उपस्थित हैं—अपनी समस्त शक्ति के साथ सर्वशक्तिमान् रूप में वे यहाँ विराजते हैं और परदे के पीछे से सतत आग्रह तथा आश्चर्यकारी धीरज के साथ, लेकिन साथ ही कृतसंकल्प वे एक के बाद एक विजयें प्राप्त करते हुए—जैसा कि उनका कार्य करने का तरीक़ा है—'नूतन सृष्टि' का सञ्चालन कर रहे हैं; साथ ही वे मानवजाति की चेतना को बदलने, सभी आयामों में उसे रूपान्तरित करने के कार्य में संलग्न हैं। वे यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि इसमें उन्हें बहुत प्रतिरोधों का सामना करना पड़ेगा, मानवजाति बार-बार पतन के गर्त में जा गिरेगी; लेकिन देखा जाये तो ये क्षणिक पतन मानवजाति को बाधाओं से पार लगाने में भी बहुधा सहायक होते हैं और अगर मानवता सचेतन बन जाये तो वह देखेगी कि यह एक वैश्व गति है जो 'उनकी' ज्योति को इस धरा की शान्ति में उतार लायेगी। और सबसे बड़ी बात यह है कि इस सबका आधार आध्यात्मिकता है, वे तथाकथित कृत्रिम धार्मिक आन्दोलन नहीं जिनके सार में होती हैं स्वैर कल्पनाएँ, युद्ध तथा अनावश्यक कलह।...

... जब तक मनुष्य अपनी चेतना को बदलने की कोशिश नहीं करता... यह ऐसी बन्द गली है जिससे उस पार जाया नहीं जा सकता। कोई भी, न मनुष्य, न ही किन्हीं अद्वितीय क्षमताओं से सम्पन्न कोई व्यक्ति-विशेष ही कुछ कर सकता है या भगवान् और विरोधी शक्तियों के बीच की खाई को पाट ही सकता है।

लेकिन चिन्तित न होओ। जिन्हें यह भार सौंपा गया है, जो इसके लिए ज़िम्मेवार हैं, वे मनुष्य को 'नूतन जगत्' की सीमा पर ला खड़ा करने में जुटे हुए हैं; वे कठिनाइयों तथा बाधाओं को जड़ से उखाड़ने में निरन्तर लगे हैं, और मनुष्य को एक उज्ज्वल भविष्य की ओर बढ़ाये लिये जा रहे हैं। अकेले वे ही हैं जो मनुष्यों की इस बीमारी को हर सकते हैं, क्योंकि वे ही हमारे जीवन, हमारे अस्तित्व के 'स्वामी' हैं। भरोसा रखो और सब कुछ ठीक हो जायेगा। क्रमविकास की सर्पिल गति में, मनुष्य के पार्थिव जीवन की भूल-भुलैया में शायद मनुष्य एकदम नीचे तली में आ पहुँचा है। लेकिन

जल्दी ही, हम फिर से प्रकाश का दर्शन करेंगे—एक महान् परिवर्तन की आशा रखेंगे—केवल 'उनकी' उपस्थिति की निश्चिति ही धरती पर 'भागवत' साम्राज्य को उतार कर उसे प्रतिष्ठित कर सकती है।
Blessings of the Grace पृ. १२५

श्रीअरविन्द की प्रतापी शक्ति

अभी बहुत समय नहीं हुआ जब 'म' की बहन का देहान्त हुआ था (मनोवैज्ञानिक रूप से वह बड़ी शोचनीय अवस्था में थी—उसमें श्रद्धा का एकदम अभाव था)। हाँ, तो उस रोज़, जैसे ही मुझे पता चला कि वह गुज़र रही है, मुझे याद है मैं ऊपर ही थी, श्रीअरविन्द के साथ सूक्ष्म रूप से वार्तालाप-सा कर रही थी (ऐसा बहुत बार होता है), तब मैंने उनसे पूछा, "ऐसे लोगों का क्या होता है जब वे यहाँ आश्रम में शरीर छोड़ते हैं?" "देखो", उन्होंने उत्तर दिया, और मैंने 'म' की बहन को गुज़रते हुए देखा; और उसके ललाट पर मैंने ठोस स्वर्णिम प्रकाश के साथ श्रीअरविन्द का प्रतीक देखा (बहुत चमकदार नहीं था, लेकिन था बहुत ठोस)। तो यह बात है। और इस चिह्न की उपस्थिति के साथ मनोवैज्ञानिक अवस्था का कोई मूल्य नहीं रह जाता—उसे कोई चीज़ छू नहीं रही थी। और वह शान्ति से, बहुत शान्ति के साथ गुज़री। फिर श्रीअरविन्द ने मुझसे कहा, "वे सभी जो यहाँ आश्रम में रहते हैं और यहीं उनकी मृत्यु होती है, उन्हें स्वाभाविक रूप से वही समान सुरक्षा मिलती है, उनकी आन्तरिक स्थिति भले कैसी भी क्यों न हो।"

मैं यह नहीं कह सकती कि मैं हैरान थी, लेकिन मैंने उस प्रतापी शक्ति की सराहना की कि व्यक्ति का यहाँ रहना और यहीं गुज़रना—यह सरल-सा तथ्य व्यक्ति के इस पार से उस पार निकलने में अधिकाधिक सहायता प्रदान करता है।

लेकिन यहाँ हर तरह के लोग हैं। उदाहरण के लिए, 'न' को ही लो, ऐसा व्यक्ति जिसने श्रीअरविन्द की सेवा करने के विचार से ही अपना सारा जीवन यहाँ जिया—मेरी फ़ोटो को अपनी छाती से चिपकाये हुए उसने अपना शरीर छोड़ा। 'न' बहुत समर्पित व्यक्ति था, बहुत सचेतन, उसमें अटूट श्रद्धा थी, और उसकी सत्ता के सभी भाग उसके चैत्य के चारों तरफ़

सुव्यवस्थित थे। जिस दिन वह शरीर छोड़ने वाला था, छोटी 'म' समाधि के पास बैठी ध्यान कर रही थी कि अचानक उसे एक अन्तर्दर्शन हुआ: उसने देखा कि समाधि के साथ खड़े वृक्ष के सभी पुष्पों ने (गुलमोहर के वे फूल जिन्हें मैंने 'सेवा' नाम दिया है) इकट्ठे होकर एक बड़ा-सा गुलदस्ता बना दिया है और वे उठ रहे हैं, ऊपर ही ऊपर उठ रहे हैं। और उसके अन्तर्दर्शन में ये फूल 'न' के चित्र से जुड़े हुए थे। वह दौड़ी-दौड़ी घर गयी—'न' की मृत्यु हो गयी थी।

इस अन्तर्दर्शन के बारे में मुझे बाद में पता चला, लेकिन जब उसने शरीर छोड़ा, मैंने उसकी सारी सत्ता को इकट्ठा देखा, वह एकत्व में बँधी हुई थी, पूरी तरह से एकरूप थी और एक महान् अभीप्सा के साथ उठ रही थी, इधर-उधर छितरे और पथ से भटके बिना सीधी उस सीमा पर जा रही थी जिसे श्रीअरविन्द ने 'उच्चतर गोलार्ध' कहा है, वहाँ जहाँ से श्रीअरविन्द अपनी अतिमानसिक क्रिया के द्वारा धरती का सञ्चालन करते हैं। और वह उस प्रकाश में विलीन हो गया।

२४ जून १९६१ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

१५ अगस्त १९६५ का दर्शन

१५ तारीख़ को, 'बालकनी' में श्रीअरविन्द उपस्थित थे। वे आये थे और मेरे साथ बाहर बालकनी में गये *(श्रीमाँ दर्शन-दिवसों पर अपने कमरे की बालकनी में आकर दर्शन दिया करती थीं, उसे 'बालकनी दर्शन' कहा जाता था–सं.)* मैंने किसी से कुछ नहीं कहा, एकदम किसी से भी नहीं। यहाँ एक छोटी बच्ची है, १५ साल के लगभग की, जिसे यहाँ मनमौजी, कुछ सनकी-सा माना जाता है (उसे यहाँ से भेज देने की भी बात चल रही थी), एक बार मैंने उसे उसके जन्मदिन पर मेरे पास आने को कहा था, मुझे तो वह बढ़िया बच्ची लगी (!) और उसी ने दो-तीन दिन पहले मुझे लिखा कि १५ तारीख़ को, बालकनी दर्शन के समय उसने श्रीअरविन्द को मेरी दायीं तरफ़ खड़े देखा था। और उसने मुझसे पूछा *(माँ हँसती हैं)*, "क्या यह सच है?"

मुझे यह बात कुछ विनोदी लगी। मैंने अपने-आपसे कहा, "यहाँ लोग कैसे-कैसे नैतिक मूल्यांकन कर बैठते हैं! ऐसा ही होता है दुनिया में।"

लेकिन आजकल मुझे बच्चे नहीं दिखलायी देते; पहले मैं उनसे रोज़ मिलती थी, या महीने में एक बार तो नियमित रूप से मेरी उनसे मुलाक़ात हो ही जाया करती थी। जब मैं 'प्लेग्राउण्ड' जाया करती थी तब मैं उनसे रोज़ मिला करती थी।

लेकिन अब नहीं, सिवाय उनके जन्मदिन पर। लेकिन उस बच्ची की बात मुझे रुचिकर लगी। शायद औरों ने भी उन्हें देखा हो, लेकिन और किसी ने कहा नहीं। लेकिन उसने मुझे लिखा, "माँ, मैंने श्रीअरविन्द को आपके निकट खड़े देखा था, क्या यह सच है?"

२१ अगस्त १९६५ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

श्रीअरविन्द ने हमसे कहा था (स्वयं उन्होंने कहा था) और हम अनुभव से इस बात के क़ायल हैं कि मन के ऊपर एक चेतना है जो मानसिक समझदारी से कहीं ज़्यादा समझदार है, और चीज़ों की गहराई में एक ऐसा संकल्प है जो मानव संकल्प से कहीं ज़्यादा शक्तिशाली है।

हमारा सम्पूर्ण प्रयास यही हो कि हम इसी चेतना को और इसी संकल्प को अपने सारे जीवन और अपने सभी क्रिया-कलापों पर शासन करने और उन्हें व्यवस्थित करने का कार्य सौंप दें। आश्रम का निर्माण इसी तरीक़े से हुआ।

१९२६, जब से श्रीअरविन्द निवृत्त हुए और उन्होंने सारा कार्यभार मुझे सौंप दिया (उस समय हमारे पास किराये के केवल दो मकान थे और मुट्ठी-भर शिष्य) तब से सब कुछ हरे-भरे घने वन की भाँति बढ़ने तथा पनपने लगा, और आश्रम का हर एक विभाग किसी कृत्रिम योजना द्वारा नहीं बल्कि जीवन्त तथा ऊर्जस्वी आवश्यकता के द्वारा निर्मित तथा विकसित होने लगा। यही होता है सतत विकास तथा अनन्त प्रगति का रहस्य। वर्तमान कठिनाइयाँ मुख्य रूप से उन शिष्यों के मनोवैज्ञानिक प्रतिरोध से आती हैं जो साधना की द्रुत गति के साथ-साथ नहीं चल पाते और जो उन मानसिक तरीक़ों के चंगुल में फँस जाते हैं जो यहाँ के कार्य में अड़ंगे लगा देती हैं। चेतना का विकास तथा शुद्धि ही इसका एकमात्र इलाज है।

११ मार्च १९६४ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

बहुत सुन्दर उपहार

दर्शन के दिन तुम्हें कोई विशेष अनुभूति नहीं हुई?

जी नहीं माँ।

सवेरे से शाम तक श्रीअरविन्द यहाँ मौजूद थे।

हाँ, और एक घण्टे से भी ज़्यादा के लिए उन्होंने मुझे उस जीवन में रखा जो मानवजाति और मानवजाति के विभिन्न स्तरों के बीच नयी या अतिमानसिक सृष्टि के सम्बन्ध का जीवित और ठोस दृश्य था। वह अद्‌भुत रूप से स्पष्ट, जीवन्त और ठोस था...। वह सारी मानवजाति थी जो अब पूरी तरह पाशविक नहीं है, जिसने मानसिक विकास से लाभ उठाया है और अपने जीवन में एक तरह का सामञ्जस्य पैदा किया है—एक ऐसा सामञ्जस्य जो प्राणिक, कलात्मक और साहित्यिक है—और उसमें रहने वालों का बहुत बड़ा भाग उससे सन्तुष्ट है। उन्होंने एक प्रकार का सामञ्जस्य पा लिया है और उसके अन्दर वे ऐसा जीवन जीते हैं जैसा सभ्य परिस्थितियों में हुआ करता है, यानी, ऐसा जीवन जो कुछ-कुछ सुसंस्कृत होता है, जिसमें परिष्कृत रुचियाँ और परिष्कृत आदतें होती हैं। उस सारे जीवन में एक विशेष सौन्दर्य होता है जिसमें वे आराम से रहते हैं। जब तक कोई अनर्थ ही न हो जाये वे प्रसन्न और सन्तुष्ट रहते हैं, जीवन से सन्तुष्ट रहते हैं। ऐसे लोग आकर्षित हो सकते हैं (क्योंकि उनकी अभिरुचि सुसंस्कृत है और वे बौद्धिक दृष्टि से विकसित हैं), वे नयी शक्तियों से, नयी चीज़ों से, भावी जीवन से आकर्षित हो सकते हैं; उदाहरण के लिए, वे मानसिक रूप से, बौद्धिक रूप से श्रीअरविन्द के शिष्य बन सकते हैं। लेकिन उन्हें भौतिक दृष्टि से बदलने की ज़रा भी ज़रूरत नहीं मालूम होती; और अगर वे बाधित किये जायें तो पहले तो यह असामयिक और अनुचित होगा और फिर व्यर्थ ही में उनके जीवन में अव्यवस्था और गड़बड़ी पैदा कर देगा।

यह बहुत स्पष्ट था।

और फिर कुछ ऐसे थे—विरले व्यक्ति—जो रूपान्तर के लिए तैयारी करने के लिए, नयी शक्ति को खींचने के लिए, 'जड़-द्रव्य' को अनुकूल बना लेने और अभिव्यक्ति के साधन खोजने के लिए आवश्यक प्रयास करने को तैयार थे। ये लोग श्रीअरविन्द के योग के लिए तैयार हैं। ये संख्या

में बहुत ही कम हैं। ऐसे लोग भी हैं जो यज्ञ की भावना से भरे हैं। वे कठोर, कष्टप्रद जीवन के लिए भी तैयार हैं यदि वह इस भावी रूपान्तर की तरफ़ ले जाये या उसमें सहायता दे। लेकिन उन्हें कभी, किसी प्रकार, दूसरों को प्रभावित करने की कोशिश नहीं करनी चाहिये, उन्हें अपने प्रयास में भाग लेने के लिए मजबूर नहीं करना चाहिये; यह बिलकुल अनुचित होगा—केवल अनुचित ही नहीं, बल्कि एकदम भद्दा भी। क्योंकि उससे वैश्व लय और गति, या कम-से-कम पार्थिव गति में परिवर्तन आ जायेगा और यह सहायता करने की जगह संघर्ष उत्पन्न करेगा और इसकी परिणति होगी विशृंखलता में।

लेकिन वह इतना जीवन्त था, इतना वास्तविक था कि मेरा सारा मनोभाव (कैसे कहा जाये?—एक निष्क्रिय मनोभाव जो सक्रिय संकल्प का परिणाम नहीं है), काम में अपनायी मेरी सारी स्थिति ही बदल गयी। और यह एक शान्ति लायी है—एक शान्ति, स्थिरता और विश्वास जो बिलकुल निर्णायक है। एक निर्णायक परिवर्तन आया है। और जो कुछ पहले की स्थिति में दुराग्रह, भद्दापन, निश्चेतना, सब प्रकार की शोचनीय वस्तुएँ मालूम होती थीं, वह सब ग़ायब हो गया है। यह मानों एक महान् वैश्व 'लय' का दर्शन था जिसमें हर चीज़ अपना स्थान ले लेती है और... हर चीज़ बिलकुल ठीक है। और रूपान्तर के लिए प्रयास एक छोटी-सी संख्या तक सीमित रह कर *ज़्यादा* मूल्यवान् और उपलब्धि के लिए अधिक सशक्त बन जाता है। यह ऐसा है मानों उन लोगों के लिए चुनाव हो गया हो जो नयी सृष्टि के पुरोगामी होंगे। और "प्रसार", "तैयारी" या "जड़-द्रव्य के मन्थन" की बातें... बचकानी हैं। यह मनुष्य की बेचैनी है।

वह एक सौन्दर्य का दर्शन था, बड़ा भव्य, शान्त और मुस्कुराता हुआ। ओह!... वह भरा हुआ था, सचमुच भागवत 'प्रेम' से भरा हुआ। और वह भागवत 'प्रेम' नहीं जो "क्षमा करता है"—नहीं, यह वैसा बिलकुल नहीं था, बिलकुल नहीं! हर चीज़ थी अपने स्थान पर, अपनी आन्तरिक लय को यथासम्भव अधिक-से-अधिक चरितार्थ करती हुई।

यह बहुत ही सुन्दर उपहार था।

'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. २४-२६

निरपेक्ष तथ्य

जो सब मैं कर रही हूँ, वह सब जो यह शरीर कर रहा है, इसमें दूसरों को वह सब देने की शक्ति है—ठीक इसी चीज़ का अभी मैं अध्ययन कर रही हूँ। मैं लोगों को एक तरह की शक्ति प्रदान कर रही हूँ ताकि वे 'परम चेतना के स्पन्दन' के साथ सम्बन्ध जोड़ सकें *(माँ अपने सिर के चारों ओर हाथ घुमाती हैं)*, और वह यहाँ कई लोगों तथा वस्तुओं में संकेन्द्रित हो सकेगी (स्वाभाविक रूप से, धरती के ऊपर सब जगह), लेकिन साथ ही कई विशेष बिन्दुओं पर भी। यही 'शक्ति' रात को उतरी थी जब मेरे मस्तिष्क में अवतरण हुआ था : किसी भी क्षण मैं एक किरण यहाँ भेज सकती थी, दूसरी को वहाँ, यहाँ किसी बिन्दु को छू सकती थी, वहाँ किसी दूसरे बिन्दु को... *(संकेत-दीप की-सी भंगिमा)*।

श्रीअरविन्द हमेशा इसी बात को निरन्तर दोहराते-तिहराते रहते हैं : "केवल अपने भरोसे कार्य करने की कोशिश मत करो, श्रीमाँ तुम्हारे लिए कर देंगी—अगर तुम 'उन' पर भरोसा रखो।"

यह बात मैं किसी से नहीं कहती। लेकिन है यह तथ्य।

मैं कभी नहीं कहती। मैं बस अभी-अभी तुमसे कह कही हूँ। लेकिन यह निरपेक्ष तथ्य है।

तुम जानते हो कि यह बस किसी एक शरीर के लिए नहीं किया जाता : यह सारी धरती के लिए किया जाता है।

लेकिन व्यक्ति पर यह करने का लाभ यह है कि तुम किसी किरण को यथार्थ बिन्दुओं पर एकाग्र कर सकते हो *(दीप-स्तम्भ का संकेत)* और परिणाम पा लेते हो—किसी चमत्कारिक रूप में नहीं, जिसमें व्यक्ति हक्का-बक्का रह जाता है; वैसे नहीं, लेकिन जब अभीप्सा सच्ची होती है, जब संकल्प सच्चा होता है... जानते हो न, मैं निरन्तर क्या करती रहती हूँ *(अर्पण की मुद्रा)* : "प्रभो, मैं यह नहीं कर सकती, मेरे लिए आप यह कर दें।..." हाँ, श्रीअरविन्द ने यही कहा है : अगर मेरे चारों ओर के लोगों का परम 'प्रभु' के साथ सीधा 'सम्पर्क' नहीं है (ऐसा सम्पर्क जो जन्म से ही मेरे साथ है, जिसके बारे में मैं अधिकाधिक सचेतन होती गयी हूँ, और जो मेरे इस पार्थिव अस्तित्व का सच्चा उत्स था), अगर लोगों का प्रभु के साथ वह 'सम्पर्क' नहीं है, तो उनका मेरे साथ सचेतन सम्पर्क तो हो ही

सकता है; यह आसान है, क्योंकि मैं तुम्हारे सम्मुख हूँ, साकार-सशरीर हूँ। तो अगर व्यक्ति समर्पण की उस अवस्था में रह सके (शब्दों या वाक्यों में नहीं, बल्कि सचमुच निष्कपट भावना के साथ), व्यक्ति यह कहे : "नहीं, मुझे पता नहीं कि मैं स्वयं, केवल अपने ही बल-बूते पर इसे कैसे कर पाऊँगा, कैसे कर पाऊँगा भला मैं? यह कितना भव्य, उत्कट कार्य है मेरे लिए, कैसे होगा मुझसे?... कैसे मैं सच्ची तथा मिथ्या गति के बीच भेद कर पाऊँगा, या उस गति को जान पाऊँगा जो 'सत्य' की ओर ले जाती है... नहीं, मैं नहीं जानता—मैं सब कुछ 'तुम्हें' सौंपता हूँ, मेरे लिए तुम यह कर दो।"

और यह चीज़ दिन के चौबीसों घण्टे चलती रहनी चाहिये, और मैं कह सकती हूँ, दिन में जितने हज़ारों पल हैं, प्रत्येक सेकेण्ड सहज रूप से, निष्कपटता के साथ, निरपेक्षतया *(समर्पण की मुद्रा)* कहो : "यह रहा मैं, स्वयं को आपको समर्पित करता हूँ।" ओह, यह आ गयी एक मुश्किल; ओह, अमुक-अमुक व्यक्ति कठिनाई से गुज़र रहा है; ओह, ये परिस्थितियाँ बुरी हैं, ओह... तब भी कहो : "यह, यह रहा मैं, मेरे पास जितना ज्ञान है उससे मैं अपनी कठिनाइयों को सुलझा नहीं सकता—वही कीजिये जो करना है, वही जिसकी आवश्यकता है, मैं अपने-आपको आपके हवाले सौंपता हूँ।" यह हर मिनट, हर पल का अर्पण होना चाहिये। फिर, उसके कुछ समय बाद, तुम्हें इतना स्पष्ट 'प्रत्युत्तर' मिलता है, समझ रहे हो न, इतना स्पष्ट कि जितने भी संशय थे या समझ की कमी थी, वे सब पहले तो चुप होने को बाध्य हो जायेंगे, फिर रास्ते से परे हट जायेंगे।

केवल अभी मैं एक ऐसे संक्रमण-काल में हूँ जिसमें मैं सक्रिय रूप से लोगों के साथ मुलाक़ात नहीं कर सकती हूँ, उन्हें यहाँ बुला नहीं सकती हूँ, ध्यान नहीं करवा सकती हूँ—अभी यह असम्भव है। शरीर दूसरे कार्य में लगा हुआ है, और स्पष्ट रूप से यह कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है कि यह शरीर अधिकाधिक 'सत्य-शक्ति' को अपने अन्दर आकर्षित करे और इस तरह निश्चल-नीरवता में *(फैलते हुए प्रकाश की मुद्रा)* कार्य करता रहे, उसके बाद एक, दो, तीन, या दस अथवा सैकड़ों लोगों की प्रगति में सहायता दे।

२८ मार्च १९६४ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

स्वर्णिम शान्ति

कल के दर्शन पर तुमने क्या अनुभव किया—"दर्शन" नहीं, शाम के ध्यान के समय?... कोई विशेष चीज़ नहीं?

जी नहीं माँ। वह बढ़िया था, लेकिन मुझे मालूम नहीं।

आह... *(हताशा के स्वर में)*। तुम घर पर थे?

नहीं माँ, श्रीअरविन्द के कक्ष में था।

ओह!...

जानते हो, जब ध्यान का समय हुआ तो मैं हमेशा की तरह ध्यान के लिए बैठ गयी, शायद आधे मिनट पहले, और तुरन्त, बिना किसी चेतावनी के, एकदम से चौंका देने वाले प्रहार के साथ: किसी चीज़ का इतना ज़बरदस्त अवतरण हुआ (मैं एकदम से जड़ीभूत हो गयी)... उसी समय मानों श्रीअरविन्द ने मुझसे कहा (उनकी व्याख्या उस "वस्तु" के साथ-साथ आयी—वह एक अन्तर्दर्शन था, जो सचमुच कहा जाये तो अन्तर्दर्शन नहीं बल्कि एकदम से ठोस वस्तु थी) और शब्द थे *'स्वर्णिम शान्ति'*। लेकिन कितने प्रबल-प्रतापी थे वे! और वे वहीं उतर गये, वहाँ से रत्ती-भर हिले नहीं। पूरे आधे घण्टे तक वे वहीं रहे, ठोस रूप में। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ...

यह एक नयी चीज़ थी, मैंने ऐसा पहले कभी नहीं अनुभव किया। मैं कह नहीं सकती... कि इसे देखा गया, एक वस्तुपरक अन्तर्दर्शन के रूप में तो नहीं देखा गया। और दूसरों ने भी सहज रूप से मुझसे कहा था कि वे ध्यान के लिए बैठे नहीं कि *(राशिभूत अवतरण की मुद्रा)* कोई चीज़ बहुत अधिक शक्ति के साथ नीचे उतरी, सब कुछ ठहर गया, और शान्ति का ऐसा भाव उतर आया जैसा उन्होंने अपने जीवन में कभी अनुभव नहीं किया।

स्वर्णिम शान्ति...

और सचमुच इससे अतिमानसिक स्वर्णिम प्रकाश का भान हुआ, लेकिन वह... कैसी शान्ति थी! जानते हो, ठोस शान्ति, अव्यवस्था तथा

क्रियाशीलता का अभाव नहीं, नहीं : वह थी ठोस, एकदम ठोस शान्ति। मैं नहीं चाहती थी कि वह रुक जाये; उन्होंने ध्यान समाप्त होने का घण्टा बजाया, लेकिन मैं दो-तीन मिनटों तक अपने ध्यान में निश्चल बैठी रही। जब मैं ध्यान से निकली, वह चीज़ भी चली गयी। और उससे मेरे शरीर में कितना, कितना अन्तर आ गया—स्वयं शरीर में—इतना अन्तर आ गया कि जब वह अनुभूति चली गयी तो मैं बहुत बेचैनी अनुभव करने लगी और मुझे स्वस्थ होने में आधा मिनट लग गया।

वह आयी और चली गयी। वह ध्यान के समय आयी और उसके बाद चली गयी। आधे घण्टे से ज़्यादा रही : पैंतीस मिनट।

स्वर्णिम शान्ति।

और शाम को (बालकनी दर्शन के समय) बहुत भीड़ थी। मेरे ख़याल से लोगों का यह सबसे बड़ा रेला था जो वहाँ जमा हुआ था, ऐसी भीड़ कभी नहीं जुटी; जहाँ तक नज़र जा रही थी, सड़कें लोगों से ठसाठस भरी थीं। तो जब मैं बाहर आयी मैंने वह दृश्य देखा, और मैंने देखा कि उस भीड़ से मानों एक चिरौरी, एक प्रार्थना, एक विरोध के बीच की कोई चीज़ ऊपर उठी... विरोध था दुनिया की, ख़ासकर देश की वर्तमान स्थिति के बारे में। और यह सम्मिलित चीज़ लहरों में उठी... मैंने इसे देखा (यह भावना सचमुच आग्रही थी) और अपने-आपसे कहा, "आज मेरा दिन नहीं है, यह श्रीअरविन्द का दिवस है," और मैंने यह किया *(अलग हटने की मुद्रा)* तथा मैं श्रीअरविन्द को सामने ले आयी। और जब वे सामने आ गये, जब उन्होंने अपने-आपको सम्मुख कर लिया तो उन्होंने बस इतना कहा, बहुत सरल भाव के साथ बस यही कहा, " *'प्रभु' अधिक अच्छी तरह जानते हैं कि 'वे' क्या कर रहे हैं।" (माँ हँसती हैं)* मैं तुरन्त मुस्कुरा उठी (मैं हँसी नहीं, मुस्कुराने लगी), और तभी वह सवेरे वाली शान्ति उतर आयी।

बस इतना ही।

'प्रभु' अधिक अच्छी तरह जानते हैं कि 'वे' क्या कर रहे हैं... कैसी पूर्ण विनोदशीलता थी उनके इस कथन में! और उसी क्षण सब कुछ शान्त-स्थिर हो गया।

१६ अगस्त १९६७ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

विकट कार्य

प्रायः मुझसे पूछा जाता है कि 'अतिमानसिक शक्ति' द्वारा शरीर को रूपान्तरित करने में श्रीअरविन्द कहाँ तक सफल हुए थे।

जी माँ, हमें इस बारे में कुछ आश्चर्य तो ज़रूर होता है, लेकिन हम इसके बारे में सचमुच नहीं जानते।

अपने छोटे-से मन से तुम जान ही कैसे सकते हो? नहीं, कोई भी नहीं समझ सकता कि यह क्या है जब तक कि उसे कुछ अनुभव न हुआ हो। लेकिन मैं तुम्हें बता रही हूँ, उन्होंने 'अपने' शरीर में पर्याप्त अतिमानसिक शक्ति उतार ली थी। कितना दुष्कर और ठोस था वह कार्य।...

तुम्हें याद है, नहीं क्या, कि जब उन्होंने शरीर छोड़ा तो शरीर लगभग पाँच दिनों तक ज्योति से दमकता रहा! पूर्णतया ज्योतिर्मय, यद्यपि उन्होंने अपनी सारी 'अतिमानसिक शक्ति' मुझमें उँडेल दी थी। जाने से पहले उन्होंने मुझे सब कुछ, सब कुछ दे दिया था। लेकिन 'अतिमानसिक कान्ति' तब भी उनके शरीर से फूट पड़ रही थी...। तुम्हें पता है कि उस पल, अन्तिम कुछ क्षणों में मैं उनके बिस्तर के पास खड़ी थी और इन खुली आँखों से देख रही थी 'अतिमानसिक ज्योति' को अपने में प्रवेश करते, बिलकुल भौतिक रूप में, मुझसे सट-सट कर वह मेरे अन्दर पैठ रही थी। कितना प्रत्यक्ष अनुभव था यह! रोम-रन्ध्रों द्वारा, वह ऐसे प्रवेश कर रही थी *(मुद्रा)*।

पहली बार मैंने देखा कि कैसे व्यक्ति भागवत कृपा में विश्वास रख सकता है, जो काम 'उन्होंने' किया है उसके बारे में ज़रा भी सोच-विचार किये बिना अटल विश्वास। जितनी चेतना उन्होंने अपने अन्दर सञ्चित कर ली थी वह चमत्कारिक थी। अलौकिक था यह—विभिन्न और अनजानी सिद्धियाँ पाकर किस स्तर पर पहुँच गये थे वे!

और फिर केवल एक निर्णय: यदि उन्होंने शरीर छोड़ दिया तो अतिमानसिक सृष्टि को नीचे लाने का काम जल्दी हो सकेगा, क्योंकि वे सूक्ष्म शरीर में रह कर ज़्यादा प्रभावकारी ढंग से काम कर सकेंगे। और तुरत उन्होंने यह शरीर पीछे छोड़ दिया और सूक्ष्म जगत् को विजित करने के अभियान में वे लग गये जो अभी भी प्रतिरोध कर रहा था। जीवन की

निस्सारता के बोध ने उन्हें शरीर छोड़ने को बाधित नहीं किया बल्कि अपने दृढ़ विश्वास में आस्था के कारण उन्होंने शरीर छोड़ा कि इस विजय को पाने के लिए उन्हें मुक्त होना होगा ताकि वे भूमि तैयार कर सकें जिससे 'सत्य' को धरती पर ला सकें, कैसे भी परिणाम क्यों न हों वे रूपान्तर का यह कार्य कर सकें। ऊपर से एक शब्द उतरा, और निर्णय ले लिया गया—एक आदेश की तरह। अब तक के किये गये बलिदानों में सबसे भव्य था यह बलिदान। इतना ही नहीं—यह था 'परम आनन्द' के हाथों अपने-आपको पूरी तरह से सौंप देना, केवल उन्हीं में रहने के लिए अपने अस्तित्व को पूरी तरह समाप्त कर देना—यह केवल वे ही कर सकते थे।

अपूर्व, अलौकिक! कैसी शक्ति, कैसी चेतना, कैसा ज्ञान, कैसी करुणा, कैसी ज्योति थी उनमें...

और उन्होंने मुझे आदेश दिया: *"धरती पर रूपान्तर के 'मेरे' कार्य को तुम करोगी... मेरी सहायता साथ रहेगी।"... (माँ ने यह अंग्रेज़ी में कहा)*

अतः मैंने कुछ सोचा नहीं। कुछ कहा भी नहीं, बस विश्वास के साथ इस काम में जुट गयी जिसे इतनी मेहनत से उन्होंने शुरू किया था और अब मुझे आज्ञा दी थी इसे करने की, जब तक पूरा न हो जाये इसे करते रहने की... मैं प्रश्न नहीं करती। जो वे चाहते थे बस उसे करना है और 'उनके' बिना मैं कुछ नहीं कर सकती।

मेरे इस प्रयास में हर क़दम पर 'वे' मेरे साथ हैं, प्रोत्साहन देने के लिए, मार्गदर्शन करने के लिए, अगर कभी डगमगाने भी लगूँ तो प्रकाश दिखाने के लिए। कितना अपूर्व कार्य किया है हम दोनों ने मिल कर!

जो सब हमने सोचा था, जिस चीज़ का भी वचन दिया था वह अब मूर्त रूप ले रही है। शरीर का रूपान्तर अब निष्फल मृगतृष्णा नहीं रह गया—एक सच्चाई बन गया है, एक प्रक्रिया जिसने जड़ें पकड़ ली हैं और विकसित हो रही है और स्थिर क़दमों से उज्ज्वल भविष्य की ओर बढ़ रही है। शरीर तो पहले ही इस 'नये प्रकाश' को इतने सुन्दर तरीक़े से ग्रहण कर रहा है। शरीर अब अधिकाधिक भागवत विश्वास से स्पन्दित होता अनुभव कर रहा है। यह जो कुछ चरितार्थ कर सकता है मैं उसके बारे में कतई सन्देह नहीं करती। इसे कुछ भी करना असम्भव नहीं लगता, एक असीम शक्ति और ऊर्जा से इसकी क्षमता बहुत अधिक बढ़ गयी है। शरीर

विशाल बन रहा है, इतना विशाल जितना सकल संसार। शरीर कोषाणुओं के रूपान्तर की क्रिया एक तरह से कर चुका है और यह 'चिर सौन्दर्य' से युक्त 'शाश्वत रूप' की हमारी कल्पना को साकार कर रहा है।

स्पष्ट ही, यह मनुष्यों की कल्पना से हज़ारों गुना अधिक सुन्दर है। इसकी कोई उम्र नहीं और न ही यह कभी काल-कवलित होगा या इसके परिणाम भोगेगा...। मैं एक शिशु की न्याईं हो गयी हूँ लेकिन बिलकुल असाधारण और अलौकिक!

शरीर कान्तिमय, पारदर्शी, सुनम्य और लोचदार बन गया है और आवश्यकतानुसार कोई भी आकार ले सकता है। यहाँ तक कि इसकी चेतना की प्रकृति भी इतनी बदल गयी है कि इसके लिए अतीत का अब कोई अस्तित्व नहीं रह गया है, और भी कितनी ही चीज़ें हैं जिन्हें शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। ओह, कितना शानदार है यह! असाधारण! अविश्वसनीय!

लेकिन... कोई भी समझ नहीं सकेगा, न विश्वास कर सकेगा या शतांश भी आत्मसात् कर सकेगा जो मेरे अन्दर घट रहा है। यह सत्य सारी सोच-समझ की पकड़ से परे है। *(माँ ध्यान में चली जाती हैं।)*

'परम', पुस्तक से, पृ. ४८-४९

सब कुछ मेरे ऊपर छोड़ दो

काश, मुझे पता होता माँ, कि क्या करना है या मैं कैसे उपयोगी हो सकता हूँ, तो मैं वह सब करता, माँ।

सब कुछ मेरे ऊपर छोड़ दो और बह जाने दो अपने-आपको धारा में, तुम्हें मार्गदर्शन मिलेगा। यह तो स्पष्ट है कि धरा पर अवतीर्ण होने का मेरा उद्देश्य है 'अतिमानस' की रूपान्तरकारी क्रिया के द्वारा शरीर का रूपान्तर करना और फलस्वरूप धरती का। और यह तभी हो सकता है यदि मैं 'अतिमानसिक' तत्त्व का बीज मनुष्यजाति में बो सकूँ और इस तरह धरती पर इस कार्य की निरन्तरता पर मुहर लग जायेगी... जो कुछ मैं वहन करती हूँ यदि उसकी अत्यल्प मात्रा भी हो तो भी वह काफ़ी होगी इस काम को निरन्तर आगे बढ़ाने के लिए।

नहीं तो... मैं कहूँगी कि धरती और मनुष्य तैयार नहीं थे, इतने ग्रहणशील नहीं थे कि नीचे उतरते हुए एक उच्चतर प्रकाश को, उच्चतर ज्ञान को, उच्चतर आनन्द को स्वीकार कर सकें, इतने तैयार नहीं थे कि अपने को सनातन के प्रति, जीवन के सत्य के प्रति खोल सकें।

तो बस, अब मुझे ज़्यादा नहीं बोलना चाहिये, बहुत बोल लिया, काफ़ी रहस्य खोल दिया, उससे कहीं ज़्यादा जितना मुझे करना चाहिये था। जल्दी करो, बहुत देर हो गयी। पुनर्दर्शनाय!

'परम', पुस्तक से, पृ. ५१-५२

श्रीअरविन्द ने सब कुछ तैयार कर दिया है

श्रीअरविन्द ने सारा आधार तैयार कर दिया है जिससे मेरा काम आसान हो जाये। 'निश्चेतना' के इस प्रदेश को खोलने की कुञ्जी श्रीअरविन्द के पास है। वे पट खोलने के लिए चाबी घुमाते हैं और मेरा मार्ग प्रकाशित कर देते हैं और इस जड़ और तमसाच्छन्न जड़द्रव्य के स्थूल शरीर में 'शक्ति', 'ज्योति' और 'भागवत आनन्द' भरने के लिए मैं बहुत धीमे क़दमों से प्रवेश करती हूँ। इस रूपान्तरकारी ज्योति का स्पर्श पाते ही इस जड़-भौतिक का गठन करने वाले अणु इस 'नयी चेतना' के प्रति सजग हो उठते हैं। इस तरह से चलता है यह काम, फैलता या बहुगुणित होता है। समझ रह हो, श्रीअरविन्द जड़द्रव्य की आत्मा हैं, सारी मानवजाति की अभीप्सा हैं। वे जड़द्रव्य में निहित प्रकाश हैं या जड़द्रव्य में अवतरित हुई आत्मा हैं। श्रीअरविन्द ने उस 'परम' से अपने को अलग किया, निश्चेतना और अज्ञान का बोझ अपने पर लाद कर सशरीर इस जड़द्रव्य में डुबकी लगायी ताकि उसे भागवत जीवन के प्रति जगा सकें। इसके लिए उन्होंने 'परम प्रभु' का, 'कृपा' का आह्वान किया कि वे नीचे उतरें और 'उनके' कार्य में मदद करें। इसीलिए 'उनका' आह्वान सुन कर मैं मानव तनु में नीचे जड़द्रव्य में उतरी, इस कष्ट, पीड़ा और मृत्यु के लोक में आयी। और हम दोनों के सम्मिलन से ही दुनिया धीरे-धीरे देखेगी भागवत जीवन के इस चमत्कार को। 'उन्हीं' के कारण मैं अवतरित हुई हूँ। उन्होंने नीचे से जड़द्रव्य की उत्कट अभीप्सा को ऊपर भेजा और प्रत्युत्तर में भागवत कृपा ऊपर से अवतरित हुई। कैसी मंगल वेला थी वह धरती के लिए!

अत्यधिक प्रगति करने का अवसर है यह जिसमें सारा विश्व अपनी सत्ता के लक्ष्य की ओर बड़े उत्साह और स्फूर्ति से बढ़ सके। हमारी सहायता के द्वारा, जो सदा ही उसे उपलब्ध होगी, और डटे रहने के संकल्प के साथ ऐसा क्या है जिसे वह संसिद्ध न कर सके! वह घड़ी आन पहुँची है।

तुम्हें पता है, हर वह प्रकम्पन जो हमसे निकलता है, ज्योति की हर रश्मि जो हमसे विकीर्ण होती है वह आकाश-दीप बन जाती है जिसका प्रकाश निश्चेतन के अन्तर में फैल जाता है और इसकी सत्ता के सत्य की ओर जाने वाले पथ को आलोकित कर देता है। श्रीअरविन्द के कारण ही मैं इस काम को कर सकी हूँ। काम का अधिकांश तो वे ही करते हैं। वे मुझे बुलाते हैं, द्वार खोलते हैं और मैं निश्चेतन की इन गहराइयों में उतर जाती हूँ और उसकी अलस तन्द्रा में पड़े अणुओं को आलोकित करने के लिए जोत जलाती हूँ। उन्हें जगाने के लिए मैं थोड़ी-सी शक्ति का दबाव देती हूँ और यह 'भागवत प्रेम' उन्हें प्रदान करती हूँ ताकि वे और अधिक अभीप्सु हों। प्रत्येक अणु को मैं इस तरह तैयार करती हूँ।

जहाँ-जहाँ हमने अपने क़दम रखे और अपनी पदछाप पीछे छोड़ी, वहाँ-वहाँ वे अणु विकीरित होते हैं और अपने आस-पास के दूसरे अणुओं पर भी प्रभाव डालते हैं और इस तरह परिवर्तन का यह सिलसिला बिना कमे, बिना थमे, चलता रहता है।

'परम', पुस्तक से, पृ. ६६-६८

प्रभु तथा उनकी शक्ति

आन्तरिक सहारा पाने के लिए वहाँ, उस अमित हृदय-गुहा में पैठना चाहिये, हमें नीचे और नीचे, ज़्यादा-से-ज़्यादा नीचे, स्तर पर स्तर, चेतना पर चेतना पार करते हुए, सब संस्कारों को पीछे छोड़ कर निरभ्र शान्ति को पाने के लिए एकदम तल तक प्रवेश करना चाहिये। सत्ता की इस अपरिमित शान्त-नीरवता में, बाहर के शोरगुल से दूर, पीड़ा और कसक से दूर, सब विचारों और कल्पनाओं से परे, दूर, सुदूर, संवेदनों की तरंगों से दूर, जहाँ अहं का कोई नामोनिशान न हो, वहाँ उस 'परम उपस्थिति' को अनुभव करने के लिए बहुत सावधानी से प्रवेश करना चाहिये। इससे भी और आगे जाना है, और अधिक ढूँढ़ने को है, अपनी चेतना को अन्दर

की ओर मोड़ना है जहाँ वह सर्व-समर्थ 'शक्ति' स्पन्दित हो रही है जो सब कुछ संसिद्ध करती है। और भी गहरे उतरना है जहाँ कोई क्रिया-कलाप नहीं, कोई संस्कार नहीं, अहं नहीं, अलग अस्तित्व नहीं, कुछ भी नहीं, हैं बस केवल आनन्द की हिलोरें और एक स्पन्दन जो हर चीज़ के मूल में है, इस तरह, सम *(मुद्रा)*, और सम्पूर्ण समभाव का स्पन्दन। ओह, इस पूर्ण और निश्चल शान्ति को महसूस करना, इसके साथ एक हो जाना...और फिर इस शुभ्र-अमल आनन्द में प्रवेश करना जहाँ चेतना केन्द्रीय सत्ता के साथ पूरी तरह तदात्म हो जाती है। वहाँ, वहाँ कोई द्वैत नहीं रह जाता, कोई सत्ता नहीं रह जाती, बिलकुल शून्य—वहाँ उस अमर जोत, अन्तर्यामी अद्वितीय और एकम् भगवान्, परमात्म के इस स्फुलिंग के साथ तदाकार हो जाना जो हम सबमें वास करता है।

और इस पावनकारी 'जोत' के और भी तल में वास करते हैं श्रीअरविन्द —सनातन परमानन्द, सर्वसमर्थ, अजेय, हमारी सत्ता के 'अधीश्वर', जीवन में अभिव्यक्त सर्वव्यापी भगवान्, अपने कार्य-सम्पादन में सर्व-समर्थ, परमा शक्ति की अभिव्यक्त सर्वज्ञता; वे जो हमारा लक्ष्य भी हैं, स्वामी भी और हमारे प्रियतम सखा भी—और इस सबके होते हुए भी वे हैं 'परम प्रभु, परमेश्वर'।

जब कोई सचमुच उन्हें पुकारता है तो श्रीअरविन्द वहीं से *(माँ हृदय-केन्द्र की ओर इशारा करती हैं)* उत्तर देते हैं। यह स्पन्दित है उनके नाम से, उनकी चेतना से, वहाँ गूँज है श्रीअरविन्द के नाम की क्योंकि 'वे' अंकित हैं वहाँ।

अतल गहराइयों में उन्हीं का निवास है—सारी सत्ता उन्हीं के कारण प्राणवन्त है। उन्हीं के द्वारा स्पन्दित है। समस्त भूमण्डल में उन्हीं के स्पन्दन फैले हैं। 'वे' विराजते हैं सर्वत्र, जीवन्त है उनकी उपस्थिति, फूँक रही है प्राण अखिल भुवन में।

उनके नाम का परम आनन्द सबके मर्म को भेद जाता है, उन्हें पवित्र कर देता है, सत्य सनातन पावन हर्ष-निनाद के साथ बज उठता है, गूँज उठता है वह 'नाम' सर्वत्र। उनके नाम से जीवन सार्थक हो उठता है। अखिल विश्व में, सकल चराचर में छिपे उस 'अन्तर्यामी भगवान्' को फिर से खोज निकालना... उन्हें पाना है चिरन्तन खेल। उनको अनुभव करने का अर्थ है पूर्ण पवित्रता की निर्विकार शान्ति को अनुभव करना। उनको

पा लेने का अर्थ है शाश्वत आनन्द की प्राप्ति। उनको पुकारने का अर्थ है अनन्त के बन्द द्वारों को खोलना। ऐसी है श्रीअरविन्द के नाम की महिमा। *(माँ ध्यान में डूब जाती हैं)*।...

तो यह है कृतज्ञता का अर्थ : 'भगवान्' हैं और उनके प्रति अनवरत कृतज्ञता-ज्ञापन के द्वारा एक अलौकिक आनन्द हमारी सारी सत्ता को एक भव्य आत्मोत्सर्ग के भाव से भर देता है और हम शान्त पूजा-भाव में अपनी सत्ता के परम अधीश्वर को स्वयं को समर्पित कर देते हैं।...

मैं उस शाश्वत जोत में एक उपस्थिति की तरह हूँ, एक शक्ति की तरह हूँ जो काम को शुरू करती है, उसमें जान फूँकती है, एक शान्ति हूँ जो सब कुछ मधुमय और शान्त कर देती है, एक आनन्द हूँ जो छलका पड़ता है और ऊपर उठा लेता है, एक ज्योति हूँ जो पवित्र करती है और हूँ एक स्पन्दन जो अनुमन्ता है।

श्रीअरविन्द वहाँ हैं प्रतिपालक 'विभूति' के रूप में और मैं हूँ वहाँ 'मार्गदर्शक' के रूप में। वास्तव में हम एक ही हैं दो रूपों में। एक, जो निरीक्षण करता है—साक्षी, दूसरा जो कार्य सम्पन्न करता है—शक्ति।...

हाँ, मेरे वत्स, जो मुझे और श्रीअरविन्द को पहचान लेते हैं—असल में तो यह एक ही बात है, हम दोनों एक ही हैं,—उनके लिए 'सत्य' की ओर जाने के पथ में आयी सब बाधाएँ, सब कठिनाइयाँ, सब फन्दे और तथाकथित अड़ंगे बुहार दिये जाते हैं और सदा के लिए खदेड़ दिये जाते हैं,—इस जीवन में, मरणोपरान्त और आगामी जीवनों तक के लिए भी —'शाश्वत काल' तक।

हाँ, उनके लिए श्रीअरविन्द सर्वशक्तिमान् हैं।

बस, केवल इतना ही जपना है :

"माँ—श्रीअरविन्द, माँ–श्रीअरविन्द"... *(माँ ध्यान में डूब जाती हैं)*।

इतना काफ़ी है। *(ध्यान में डूब जाती हैं)*।

'परम', पुस्तक से, पृ. ७९-८०

धरती पर शारीरिक व भौतिक रूप से कृतज्ञता में ही तुम पवित्रतम आनन्द का स्रोत पाते हो।

श्रीमाँ

नवीन तथा बेहतर जगत्

मैं जानता हूँ कि यह तुम्हारे तथा हर एक के लिए विक्षोभ का समय है। सारे संसार के लिए अभी ऐसा ही है; अस्त-व्यस्तता, संकट, अव्यवस्था और गड़बड़ ही चारों तरफ़ दिखायी दे रही हैं। बेहतर चीज़ें जो आने वाली हैं वे परदे के पीछे तैयार या विकसित हो रही हैं और सबसे बुरी चीज़ें हर जगह घर बसाये दीख रही हैं।

मुझे भय है कि तुम जो अपनी चिट्ठियों में उन लोगों की दुःखद अवस्था का वर्णन कर रहे हो जो आज की दुनिया की परिस्थिति देख कर विलाप कर रहे हैं, उन्हें मैं कोई दिलासा नहीं दे पाऊँगा। चीज़ें बुरी **हैं**, बदतर हो रही हैं, और किसी भी समय, अगर ऐसा सम्भव हो तो बुरी-से-बुरी, एकदम से बुरी हो सकती हैं—और वर्तमान विक्षुब्ध जगत् में ऐसा लगता है कि कोई भी विरोधाभास—वह कैसा भी क्यों न हो—सम्भव है। सबके लिए अभी सबसे अच्छी चीज़ है यह जानना कि यह सब ज़रूरी था क्योंकि कुछ सम्भावनाओं को उभरना ही था और अगर एक नये और बेहतर जगत् को आना ही है तो इन सब विरोधों का सामना करना आवश्यक है, इन सम्भावनाओं को बाद के लिए टाला नहीं जा सकता। यह योग की तरह है जिसमें सत्ता में स्थित सक्रिय या निष्क्रिय चीज़ों को प्रकाश के सम्मुख लाना ही होता है ताकि विरोधियों को धर पकड़ कर बाहर फेंका जा सके, अतल गहराइयों से जगा कर शुद्ध और पवित्र बनाया जा सके। और वे लोग वह कहावत भी याद रख सकते हैं कि उषा के पहले का अन्धकार सबसे घना होता है और यह भी कि उषा का आना अवश्यम्भावी है। लेकिन उन्हें यह भी याद रखना चाहिये कि जिस नये जगत् के आगमन की हम बाट जोह रहे हैं उसकी बनावट इस पुराने जगत् के जैसी नहीं होगी या वह केवल अपनी बानगी या प्रतिरूप में ही भिन्न नहीं होगा, बल्कि उसे किसी दूसरे तरीक़े से ही प्रकट होना होगा, बाहर से नहीं बल्कि अन्दर से बाहर आना होगा—तो सबसे अच्छा तरीक़ा है कि बाहर घट रही शोचनीय चीज़ों में तल्लीन न रह कर व्यक्ति को अपने साथ लगे रहना चाहिये, यानी अपने अन्दर विकसित होना चाहिये ताकि वह नवीन जगत् के लिए प्रस्तुत हो सके, वह जगत् चाहे जैसा रूप लेकर क्यों न प्रकट हो।

CWSA खण्ड ३१, पृ. ६९१ **श्रीअरविन्द**

'पुरोधा'

दैनन्दिनी

अप्रैल

१. हे प्रभो, तू हमारे जीवन का परम सम्राट् बन जा और सारे अन्धकार को दूर भगा दे जो हमें तेरे दर्शन करने से, तेरे साथ सतत सम्पर्क रखने से रोकता है।

२. जब मेरे विचार तेरी ओर उड़ान भरते हैं और तेरे साथ एक हो जाते हैं, तब सब कुछ कितना सुन्दर, भव्य, सरल और शान्त बन जाता है।

३. अपने हृदय में शान्ति के साथ, अपने मन में प्रकाश के साथ, हे स्वामी, हम तुझे अनुभव करते हैं। उसे हम अपने अन्दर इतना जीवन्त पाते हैं कि यह जानते हुए कि सर्वत्र तेरा ही मार्ग है, हम घटनाओं की प्रतीक्षा प्रसन्नचित्त से कर रहे हैं।

४. तेरा विधान हमारा विधान है और अपनी सारी शक्ति से हम यह अभीप्सा करते हैं कि तेरी शाश्वत चेतना के साथ हमारी चेतना का तादात्म्य हो, कि हर क्षण, हर वस्तु में हम तेरा उदात्त कार्य चरितार्थ करें।

५. वर दे कि अब से हम केवल तेरी ही आँखों से देखें और तेरी ही इच्छा द्वारा कार्य करें।

६. मेरे सब कार्य तेरे विधान का समर्थन करें, तेरी और मेरी इच्छा में कोई भेद न रहे।

७. मैं तुझसे विनती करती हूँ, वर दे, कि मेरी समस्त सत्ता तेरे साथ एक हो जाये, तेरी उपलब्धि की ओर पूर्णतः जाग्रत् प्रेम की एक ज्वाला के सिवा मैं और कुछ न बनूँ।

८. हे ईश्वर, मैं अत्यन्त नम्रता के साथ तुझसे प्रार्थना करती हूँ कि मेरे अन्दर सचेतन या अवचेतन रूप से कुछ भी तुझे धोखा न दे। तेरे पवित्र कार्य की सेवा में ज़रा भी लापरवाही न आये।

९. प्रत्येक दिवस, प्रत्येक क्षण नये और अधिक पूर्ण समर्पण के लिए एक अवसर होना चाहिये,—गभीर और नीरव समर्पण का जो दिखायी तो

न दे किन्तु जो गहरे पैठ कर समस्त कार्य को रूपान्तरित कर दे।

१०. एकाकी और शान्त, हमारे मन को हमेशा तेरे अन्दर विश्राम करना चाहिये और उस पवित्र शिखर से वास्तविकता का सच्चा रूप देख पाना चाहिये, एकमात्र और शाश्वत सद्वस्तु को देखना चाहिये जो सब चीज़ों के पीछे विद्यमान है।

११. स्वामी, वर दे कि मैं अपने भटकते विचारों का स्वामी बन जाऊँ, कि तेरे अन्दर जीते हुए मैं जीवन को तेरे द्वारा देखूँ।

१२. वर दे कि मैं हमेशा तेरे दिव्य प्रेम में रहूँ ताकि वह मेरे अन्दर, मेरे द्वारा जीवित रहे।

१३. मैं अपनी अपूर्णताओं को, कठिनाइयों को, दुर्बलताओं को जानता हूँ लेकिन मैं तेरे ऊपर पूर्ण विश्वास करता हूँ और नीरव भक्ति में तेरे सामने झुकता हूँ।

१४. हे प्रभो, हमारा जो कुछ है वह सब तेरी आराधना करे, तेरी सेवा करे। सबको शान्ति प्राप्त हो।

१५. प्रत्येक वस्तु में तुझे ढूँढ़ना, प्रत्येक परिस्थिति में तुझे अधिक-से-अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त करने की इच्छा करना; इसी मनोवृत्ति में परम शान्ति, पूर्ण प्रसन्नता और सच्चा सन्तोष है।

१६. हे ईश्वर, तू हमारी सुरक्षा है, हमारा एकमात्र सुख है, तू हमारा देदीप्यमान प्रकाश, हमारा विशुद्ध प्रेम, हमारी आशा और शक्ति है।

१७. जिस व्यक्ति ने अपनी सत्ता की पूरी सच्चाई के साथ अपने-आपको तुझे अर्पित कर दिया है... वह पाता है कि उसके जीवन में सब चीज़ें बदल जाती हैं और सारी परिस्थितियाँ तेरे विधान को अभिव्यक्त करना आरम्भ करती हैं और उसके समर्पण में सहायक होती हैं।

१८. आह, यह व्याकुलता क्यों कि मेरे लिए घटनाओं का मोड़ इस तरह या उस तरह होना चाहिये! क्यों न मैं अपनी शक्ति को शान्त आन्तरिक विश्वास से यह इच्छा करने के लिए लगाऊँ कि तेरा विधान विजयी हो।

१९. प्रत्येक क्षण की क्रियाशीलता में हमें तेरी सेवा करनी और अपने-आपको तेरे साथ एक करना चाहिये।

२०. हे प्रभो, अब मुझे अपने-आपको पूरी तरह अर्पित कर एक कोरे

काग़ज़-सा बनना चाहिये जिस पर तेरे विचार और तेरी इच्छा मेरी ओर से विकृति के ख़तरे के बिना अंकित हो पायें।

२१. यह शरीर तेरा यन्त्र है, यह इच्छा तेरी चेरी है और यह बुद्धि तेरा उपकरण है, समस्त सत्ता केवल 'तू' है।

२२. सच्ची बात तो यह है कि सच्ची नम्रता ही हमारी संरक्षिका है—यह अहंकार को अनिवार्य रूप से विलीन करने का सबसे निश्चित रास्ता है।

२३. वर दे कि यह यन्त्र सचेतन रूप से अपने-आपको जानते हुए तेरी सेवा करे, मेरी यह चेतना तेरी चेतना में विलीन होकर तेरी दिव्य दृष्टि से सब चीज़ों पर मनन करे।

२४. इस शरीर के द्वारा तू संसार को देखेगा, इस यन्त्र के द्वारा तू संसार में कार्य करेगा।

२५. हे मेरे दिव्य स्वामी, मेरा प्रेम तेरी ओर पहले से कहीं अधिक तीव्रता से अभीप्सा करता है। संसार में मुझे केवल अपना जीवन्त प्रेम बना दे और कुछ नहीं।

२६. मुझे पता है कि सब कुछ तेरी इच्छा के अनुसार चलता है और पवित्र पूजा-भाव से मैं आनन्द सहित तेरी इच्छा पर भरोसा कर रहा हूँ। हे ईश्वर, मैं वही बनूँगा जो तू चाहे।

२७. वर दे कि प्रत्येक बाधा दूर हो जाये। मेरे हर भाग में अज्ञान के अन्धकार का स्थान तेरा दिव्य ज्ञान ले ले।

२८. समस्त विश्व में तेरे जीवन, तेरे प्रकाश, तेरे प्रेम के सिवा कुछ भी नहीं है।

२९. वर दे कि तेरे लिए मेरा प्रेम बढ़ता चला जाये ताकि मैं समस्त प्रेम बन जाऊँ, तेरा ही प्रेम और तेरा प्रेम होने के कारण सम्पूर्ण रूप से तेरे साथ एक हो जाऊँ।

३०. वर दे कि विचार स्पष्ट, व्यवस्थित, आलोकित हो जायें और तेरे प्रेम से रूपान्तरित भी हो जायें।

सारी जीवन-शक्तियाँ केवल तेरे प्रेम द्वारा गठित होकर, उससे व्याप्त होकर, अप्रतिरोध्य पवित्रता, और सतत ऊर्जा, शक्ति और आर्जव पाती हैं।

स्वप्न और अन्तर्दर्शन

माताजी और श्रीअरविन्द ने स्वप्न और अन्तर्दर्शन में भी भेद किया है। माताजी और श्रीअरविन्द के बहुत-से अन्तर्दर्शनों और अनुभूतियों का उल्लेख मिलता है। आज मैं इनमें से दो का उल्लेख करूँगा। जब माताजी तेरह वर्ष की थीं और पैरिस में रहती थीं तो हर रात सोते ही वे अपने शरीर से बाहर निकल जाती थीं। वे सुनहरा जामा पहने हुए नगर के ऊपर उठ जाती थीं। उन्हें दिखलायी देता था कि उनका चोगा बड़ा और बड़ा होता जाता और सारे शहर को लपेट लेता था। वे देखती थीं कि चारों ओर से बूढ़े, जवान, बच्चे सब तरह के लोग अपने-अपने घरों से निकल कर उनके पास आते थे और उनके चोगे को छूते थे। दुःख-दर्द से भरे लोग उनके पास आते, उनके चोगे को छूते और ख़ुश होकर लौट जाते थे। यह शायद उनके आने वाले जीवन की पूर्व-सूचना थी जिसमें वे उच्चतर चेतना को नीचे उतार कर लाने वाली थीं, जिसके सम्पर्क में आकर लोग सुखी होकर लौटने वाले थे।

उन्होंने एक और अन्तर्दर्शन सुनाया था जिसके साथ वे यह समझा रही थीं कि स्वप्नों का अर्थ कैसे किया जा सकता है। एक आदमी ने स्वप्न में देखा कि वह गाड़ी में बैठ कर पहाड़ी के ऊपर जा रहा था। घोड़ों को चढ़ने में बहुत मुश्किल हो रही थी। आदमी घोड़ा-गाड़ी में से उतर आया और लगा गाड़ी को धकेलने। किसी ने उससे कहा, "मूर्खता मत करो, उठ कर गाड़ी में जा बैठो और घोड़ों को धीरे-धीरे ही सही ऊपर चढ़ने दो।" माताजी ने कहा, "लोग भागवत कृपा को बुलाने की जगह, जो उन्हें ऊपर ले जाये, अपने ही बल पर गाड़ी चलाना चाहते हैं।"

तो ऐसी बात है। तुम्हें स्वप्न और अन्तर्दर्शन में फ़र्क करना सीखना चाहिये और उनका अर्थ भी कर सकना चाहिये। सामान्यतः अन्तर्दर्शनों में एक दीप्ति होती है और उस प्रकाश के रंग से—लाल, नीला, हलका नीला, सुनहरा, सफ़ेद—तुम यह जान सकते हो कि किस स्तर के अन्तर्दर्शन हैं। अन्तर्दर्शन और स्वप्न दोनों ही प्रतीकात्मक हो सकते हैं। तुम सूर्य को देखते

हो, दरवाज़े को देखते हो—दोनों ही प्रतीकात्मक हैं। तुम देख सकते हो कि तुम किसी सफ़ेद फाख़्ता में या सफ़ेद हंस में प्रवेश कर रहे हो। इन सब चीज़ों का भिन्न अर्थ होगा। हो सकता है कि इसका अलग-अलग व्यक्ति के लिए अलग-अलग अर्थ हो। हर अर्थ बहुत व्यक्तिगत होता है, परन्तु उसे समझने के लिए तुमको अन्तर्दर्शन या स्वप्न पूरी तरह याद होना चाहिये।

माताजी ने कहा है कि लगातार एक वर्ष तक वे हर रोज़ अपने स्वप्न नियमित रूप से लिखा करती थीं और एक वर्ष के बाद ही वे सचमुच उनके अर्थ जान सकीं या उन पर अधिकार पा सकी थीं। वे उसे अपनी "रात की दैनन्दिनी" कहा करती थीं। हमें भी अपनी रात की दैनन्दिनी लिखनी चाहिये।

श्रीअरविन्द का योग बहुत व्यावहारिक है। माताजी ने कहा है कि अगर तुम अच्छी नींद पाना चाहो तो सोने से पहले तुम्हें बहुत खाना न चाहिये। लेकिन सोने से पहले तुम्हें एक प्याला दूध या फल का रस लेना चाहिये या कोई फल खा लेना चाहिये। इससे तुम्हारी नींद ज़्यादा अच्छी होगी। अगर तुम बहुत थके हुए हो या सारे दिन बहुत मानसिक श्रम करते रहे हो तो पहले शान्त होने की कोशिश करो। जब तुम बिस्तर पर लेटो तो तुमको लत्ते-जैसा निर्जीव-सा हो जाना चाहिये। उन्होंने कहा है कि अगर तुम ऐसे निर्जीव-से बन सकोगे तो तुम्हारे अन्दर एक पारदर्शकता आ जायेगी। इस अवस्था में तुम अपना कोई मन्त्र जप सकते हो।

माताजी और श्रीअरविन्द ने कहा है कि उनका अधिकतर काम रात को ही हुआ करता था। मैं कहूँगा कि उनका नब्बे प्रतिशत काम रात को ही होता था और सिर्फ़ दस प्रतिशत दिन में होता था।

हाँ, तो सोने से पहले न केवल एक मन्त्र का जप करो बल्कि यह संकल्प करो कि तुम अपनी नींद में सचेतन रहोगे। यह पुरानी मान्यता सच है कि आधी रात से पहले का एक घण्टा पिछली रात के दो घण्टों के बराबर होता है। माताजी इसका एक कारण बतलाती हैं कि आधी रात तक सूर्य अस्त होता रहता है और आधी रात के बाद उसका उदय शुरू होता है। वह सबसे ज़्यादा शान्ति का काल होता है इसलिए अगर हम जल्दी सो जायें तो बहुत अधिक लाभान्वित होते हैं और आधी रात के बाद आने वाली ऊर्जा से जल्दी उठ कर लाभ पाते हैं। यदि हम सचमुच

आत्म-परिपूर्णता के लिए अभीप्सा कर रहे हैं तो हमें जल्दी सोने और जल्दी उठने की आदत करनी चाहिये। अगर हमारे जीवन का यही लक्ष्य हो तो हमें अपने जीवन में कुछ नियन्त्रण लाना होगा।

माताजी ने कहा है कि हमें अपनी नींद को तीन भागों में बाँटना चाहिये—तीन घण्टे, तीन घण्टे और एक घण्टा—और हमें कम-से-कम सात घण्टे तो सोना ही चाहिये। एक बार उन्होंने कहा था कि अगर तुम अपना संकल्प विकसित कर लो तो हर तीन घण्टों के बाद जाग सकोगे फिर उसके बाद थोड़ी देर ध्यान करो और फिर सो जाओ और फिर अन्तिम बार घण्टे-भर बाद जागो। अगर ऐसी आदत डाल लो तो तुम्हारी नींद बहुत लाभदायक होगी। केवल आन्तरिक विकास के लिए ही नहीं, शरीर को ताज़गी देने के लिए भी।

उन्होंने यह भी कहा था कि सवेरे उठते समय तुम्हें बिस्तर पर से छलाँग न लगानी चाहिये और ज़रा भी हिले-डुले बिना रहना चाहिये। तुम्हें अपने सिरहाने एक दैनन्दिनी रखनी चाहिये और उठते ही अपने स्वप्नों को याद करना चाहिये। अगर तुम ऐसा करते रह सको तो कुछ समय बाद तुम उन्हें याद रख सकोगे और तुम्हें स्वप्न की कड़ी को याद करना चाहिये, यानी, अन्त में क्या हुआ, उससे पहले क्या हुआ। पहला स्वप्न कौन-सा था। अगर तुम लगे रहो तो तुम देखोगे कि एक स्वप्न समाप्त करने के बाद ऐसा लगता है कि तुम किसी और लोक में चले गये और एक और स्वप्न जिसे तुम भूल चुके थे वह भी अपने-आपको तुम्हारे सामने प्रकट कर देगा और इस तरह भूले-बिसरे स्वप्न भी याद आ जायेंगे, एक ही रात में तीन-तीन स्वप्नों को तुम याद कर सकोगे। तो इस तरह तुम पीछे जाकर सभी स्वप्नों को याद कर सकते हो।

मुझे याद है कि एक बार माताजी ने मुझे पॉण्डिचेरी से बाहर का कुछ काम दिया था और मैं उसे तेज़ी से ख़तम करके लौट आने के लिए उत्सुक था। मुझे तीन-चार रातों तक सोने का समय नहीं मिला। जब मैं लौटा तो बिलकुल तरोताज़ा था, इतना मानों मैं बारह घण्टे की नींद के बाद जागा हूँ। मैं माताजी से मिला तो उन्होंने कहा, "अब तुम जाकर सो जाओ।" मैंने विरोध किया और कहा, "मुझे सोने की बिलकुल ज़रूरत नहीं मालूम होती।" उन्होंने कहा, "मैं जानती हूँ, फिर भी तुम जाकर

सो जाओ।" मैं आश्रम में अपने कमरे में जाकर सो गया और आश्चर्य, परमाश्चर्य की बात यह है कि जब मैं सोकर उठा तो दूसरा दिन था। मैं सवेरे दस, साढ़े-दस बजे सोने गया और अगले दिन दोपहर के खाने के वक़्त उठा, शायद एक बजा होगा। ऐसी बढ़िया नींद तो शायद मुझे सारे जीवन में कभी नहीं आयी। यह एक अनुभूति थी।

जानने-लायक़ ज़रूरी बात यह है कि तुम अपनी नींद पर नियन्त्रण रख सकते हो और अगर तुम अपने-आपको भगवान् के अर्पित कर दो तो वे तुम्हारी नींद, जाग्रत् अवस्था और रोज़मर्रा के जीवन की ज़िम्मेदारी ले लेते हैं, और यह एक बहुत बड़ी प्रगति है और जो अपने-आपको भगवान् के अर्पित कर देते हैं उनके लिए बहुत बड़ी परिपूर्णता है।

(क्रमशः)

—नवजातजी

एक शिष्या के साथ श्रीमाँ का पत्र-व्यवहार

(एक शिष्या के नाम पत्र जो १९४४ में आठ वर्ष की उम्र में आश्रम आयी थीं और ग्यारह वर्ष की उम्र में यहाँ के शारीरिक शिक्षण-विभाग में कप्तान बन गयीं। उन्होंने तीस वर्षों तक इस विभाग का कार्य किया।)

मधुर माँ,

हमें किस तरह की चीज़ पढ़नी चाहिये या नहीं पढ़नी चाहिये इसमें चुनाव कैसे करें? क्या हलकी-फुलकी चीज़ें, उदाहरण के लिए सामान्य अख़बार या पत्रिकाएँ पढ़ना अच्छा है?

सामान्य अख़बार, पत्रिकाएँ या किताबें, जैसे उपन्यास इत्यादि, उन आलसी मस्तिष्क वाले लोगों के लिए हैं जो कुछ सीखने के लिए नहीं बस मौज और आराम के लिए पढ़ते हैं। ऐसे लोग जीवन को, वह जिस रूप में आये, स्वीकार कर लेते हैं और प्रगति या चीज़ों के बारे में एक गभीरतर समझ से कोई वास्ता नहीं रखते। कुछ लोग जगत् में जो हो रहा है उसे जानने के लिए पढ़ते हैं और यह मानव प्रगति का सूचक है; पढ़ने के साथ-साथ वे सिनेमा जा सकते और रेडियो सुन सकते हैं।

जो लोग अच्छी शैली विकसित करने के लिए पढ़ते हैं उन्हें बहुत अधिक पढ़ना चाहिये और उन्हें साहित्यिक-मूल्य की पुस्तकें चुननी चाहियें।

कुछ लोग सीखने के लिए पढ़ते हैं, उन्हें जिस विषय या जिन विषयों में रुचि हो : दर्शन, विज्ञान, कला इत्यादि, उनके बारे में प्रशिक्षणात्मक पुस्तकें चुननी चाहियें।

और फिर बहुत कम हैं ऐसे जो जीवन को, उसके उद्देश्य तथा उसके लक्ष्य को समझना चाहते हैं। उनके पढ़ने के लिए श्रीअरविन्द की पुस्तकें ही सबसे अच्छी हैं।

आशीर्वाद। १० सितम्बर १९६९

मधुर माँ,

आपकी सच्ची बालिका बनने में मेरी सहायता कीजिये।

यह अच्छा निश्चय है। तुम अपने साथ मेरी सहायता तथा मेरी चेतना की उपस्थिति के बारे में सुनिश्चित हो सकती हो कि वह तुम्हारा रास्ता आलोकित करे और जब कभी तुम उसे पुकारो वह तुम्हें रास्ता दिखलाये। नीरव अभीप्सा में ही तुम इस उपस्थिति के बारे में सचेतन हो सकती और उसकी सहायता पा सकती हो।

प्रेम तथा आशीर्वाद सहित। १० नवम्बर १९६९

मधुर माँ,

हम यहाँ "बड़ा दिन" क्यों मनाते हैं? हमारे लिए इस दिन का विशेष अर्थ क्या है? और बड़े दिन पर यहाँ यूरोपियनों तथा भारतीयों में भेद क्यों किया जाता है?

ईसाई धर्म द्वारा ईसा का जन्मदिवस २५ दिसम्बर मनाने से बहुत पहले यह दिवस सूर्य के वापस आने का, 'प्रकाश के दिवस' के रूप में मनाया जाता था। प्रकाश के पुनर्जन्म के इस बहुत अधिक प्राचीन प्रतीक को हम यहाँ मनाना चाहते हैं।

जहाँ तक मुझे मालूम है, आश्रम का हर कोई क्रिसमस का पेड़ देखने और उपहार-वितरण के समय आ सकता है।

यूरोपियन तथा अमरीकनों को विशेष टोकरी भेजने के इस रिवाज के पीछे यह तथ्य है कि उन देशों में वे लोग एक-दूसरे को पहली जनवरी को उपहार देने की बजाय सामान्यतः बड़े दिन पर दिया करते हैं। बस इतना ही।

आशीर्वाद। २६ दिसम्बर १९६९

मधुर माँ,

नये साल के सन्देश में क्या आप भौतिक रूपान्तर की बात कर रही हैं जब आप कहती हैं, "जगत् एक बड़े परिवर्तन के लिए तैयारी कर रहा है"? और हम उसमें सहायता कैसे कर सकते हैं?

सत्ता का आविर्भाव मनुष्य का स्थान लेगा, उस सत्ता का, जो मनुष्य के लिए वैसी ही होगी जैसा मनुष्य अभी पशु के लिए है, उसी की तैयारी हो रही है। और उस नयी चेतना की क्रिया के साथ कार्य शुरू हो चुका है जो पहली जनवरी १९६९ को उतरी थी और उन सभी में कार्य कर रही है जो तैयार हैं। इस चेतना की क्रिया तीव्रता से हो रही है और अधिकाधिक भौतिक बन रही है। अगर हम उसके कार्य के परिणाम को जल्दी लाना चाहें तो यह हमारे ऊपर निर्भर है कि हम ग्रहणशील बनें।

आशीर्वाद। १ जनवरी १९७०

मधुर माँ,

इन दिनों मेरा मन ऐसी अशान्ति में है कि मैं अपनी चैत्य सत्ता के साथ किसी प्रकार के सम्पर्क का अनुभव नहीं करती। लगता है जैसे मेरे अन्दर कोई चैत्य सत्ता ही नहीं बची।

उदास मत होओ मेरी प्यारी बच्ची, तुम्हारी चैत्य सत्ता अब भी है, क्योंकि अगर वह चली गयी होती तो तुम्हारा शरीर ज़िन्दा नहीं रह सकता।

हो सकता है कि तुम अब इसकी उपस्थिति के बारे में बहुत सचेतन न हो क्योंकि तुम्हारा मन कुछ कोलाहलपूर्ण हो गया है, इसलिए तुम चैत्य उपस्थिति को अनुभव करने के लिए काफ़ी शान्त नहीं रहीं। लेकिन इसका उपचार किया जा सकता है। और चूँकि तुमने मुझसे कहा कि तुम कोशिश करना चाहोगी, अतः, तुम्हें भेजने के लिए कल मैंने श्रीअरविन्द

का यह उद्धरण चुना :

"सतत और निष्कपट अभीप्सा, तथा केवल भगवान् की ओर मुड़ने की इच्छा ही चैत्य को सामने लाने के एकमात्र उत्तम तरीक़े हैं।"

एक ऐसा समय निश्चित कर लो जब तुम रोज़ ख़ाली और शान्त रह सको; आराम से बैठ जाओ और इस अभीप्सा के साथ अपनी चैत्य सत्ता के बारे में सोचो कि तुम्हारा उसके साथ सम्पर्क स्थापित हो जाये। अगर तुम तुरन्त सफल न हो सको तो निराश मत होना; एक दिन तुम अवश्य सफल होओगी। मैं बस तुमसे यही माँग करती हूँ कि तुमने जो समय चुना हो उसकी मुझे सूचना दे देना ताकि मैं अधिक सचेतन रूप से तुम्हारी सहायता कर सकूँ।

अपने समस्त प्रेम और आशीर्वाद सहित। २५ मार्च १९७०

मधुर माँ,

मैं रोज़ दोपहर १२.४५ से १ बजे तक इसे करने की कोशिश करूँगी। अगर मैं कुछ करने में सफल हुई तो आपको लिखूँगी। मेरी सहायता कीजिये, मधुर माँ।

अच्छा है; यह मेरे लिए भी सुविधाजनक समय है और तुम भरोसा कर सकती हो कि मैं तुम्हारी सहायता करूँगी।

आशीर्वाद। २६ मार्च १९७०

मधुर माँ,

मैं यह जानने के लिए उत्सुक हूँ कि आप क्या करेंगी जब आपने कहा कि रोज़ दोपहर को मेरी एकाग्रता के समय आप मेरी सहायता करेंगी।

मैं तुम्हारे ऊपर एकाग्र हाऊँगी और अगर तुम्हारी चेतना की किसी चीज़ ने प्रत्युत्तर दिया तो मैं उसे चैत्य जगत् में ले चलूँगी ताकि वह अपनी खोज जारी रख सके।

आशीर्वाद। २७ मार्च १९७०

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. ४६८-७५

मातृ-वन्दना

(दो लघु गीत)

(१)

एक हाथ में धारण किये हैं वे असि,
दूसरे में, गुलाब की कली,
दारुण और मनोहर, दोनों
हैं माँ!
एक हाथ में पकड़े हैं वे रेगिस्तान,
दूसरे में गुलिस्तान,—
अग्नि-क्रूर, फिर भी कैसी पुष्प-शीतल
हैं माँ!
लेकिन ये गर्वीली प्रतिकूलताएँ करती हैं उद्घोषणा,
एक-दूसरे से फुसफुसाती हुई
"हममें और हमारी माँ में रचा-बसा है,
समान छन्द का ताना-बाना"

(२)

उषाएँ इतनी शुद्ध और शीतल क्यों हैं,
मानों विशुद्ध भासाचूर्ण हों?
इसलिए, क्योंकि मैं अपने अन्तरतम में 'प्रभु'
को सहेज कर रखता हूँ।
क्यों ऊपर आकाश में महान् बादल ऐसे मिलते हैं,
जैसे भाई से भाई भेंट कर रहा हो?
इसलिए, क्योंकि मैं 'माँ' से प्रेम,
अधिकाधिक
प्रेम करता हूँ?

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

४ जुलाई १९३३ — हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय

प्रभु की महिमा हो तो ऐसी...

भगवान् और मानव या यूँ कहें कि परमात्मा और जीव सचमुच अभिन्न सखा हैं—आदिकाल से इस प्रिय बन्धन में प्रभु ने अपने-आपको बाँध रखा है। श्रुति भी इसकी साक्षी है। श्रुति कहती है कि वह अन्तर्यामी अपने अंक में इस देहाभिमानी को सदैव लिये रहता है।

हम जिस किसी युग में झाँक कर देख लें, भक्त और भगवान् के प्रेम के अटूट बन्धन की झाँकियाँ अवश्य पायेंगे। श्रीकृष्ण भी तो सदैव उन्हीं के रहे जो उन्हें अपना स्वीकार लें। और एक बार वे जिसके हो गये उसके सर्वथा हो रहे। उनका स्वभाव ही है, अपने-आपको अपनों से अभिन्न रखना।

इस कहानी का आरम्भ उस समय हुआ जब भीष्म पितामह ने शर-शय्या ग्रहण कर ली। यह महाप्रलयंकर युद्ध का समय था, कौरव-पक्ष ने शीघ्र ही अपने शोक को संयम में बाँधा, संग्राम-भूमि पर पितामह के गिरते ही कर्ण स्वयं कौरव-सेना के अग्रभाग में आ गया। और कर्ण की सम्मति से दुर्योधन ने आचार्य द्रोण को अपने पक्ष के महासेनापति के पद पर तुरन्त प्रतिष्ठित कर दिया। कौरव-सेना में फिर से युद्ध का जोश उमड़ आया।

इधर जल्दी ही द्रोणाचार्य ने समर-भूमि में यह सिद्ध कर दिखलाया कि उन्हें महासेनापति बना कर दुर्योधन ने कोई भूल नहीं की। सचमुच युद्ध-कौशल में वे भीष्म पितामह के जितना ज्ञान और बल रखते थे। और पहले ही दिन, अर्थात् महासेनापति के पद पर आसीन होते ही उन्होंने दुर्योधन से कहा—"आज तुम युद्ध में जो चाहो वरदान मुझसे माँग लो।"

दुर्योधन ने बहुत सोच-विचार कर वर माँग ही लिया—"आप युधिष्ठिर को जीवित पकड़ कर मेरे सामने ला दें।"

दुर्योधन यह माँग लेगा यह तो द्रोणाचार्य ने सोचा भी न था। वे उसकी माँग पर चकित रह गये, फिर मन ही मन दुर्योधन की बुद्धि की दाद देने लगे। उन्होंने सोचा—"युधिष्ठिर वैसे तो सचमुच अजात शत्रु हैं, लेकिन अगर उन्हें युद्ध में हमारी सेना का कोई परम वीर किसी भी प्रकार मारने में सफल हो जाये तो अनर्थ हो जायेगा। अर्जुन तो क्रोध की लपटें बन कर दिव्यास्त्रों के प्रयोग में मान-मर्यादा सब भूल बैठेंगे। अर्जुन तो दूर, नकुल, सहदेव में से अगर कोई क्रोधावेश में आ जाये तो वह अकेला ही

सारी कौरव-सेना का संहार करने की शक्ति रखता है। और भीमसेन तो प्रलय मचा देंगे। युधिष्ठिर को जीवित ही बन्दी बनाना होगा। उनको मारना तो अपने समस्त कुल के विनाश को आमन्त्रण देना है। युद्ध में वे बन्दी बना लिये जायें तो फिर उन्हें द्यूत-क्रीड़ा में हराया जा सकता है, उन्हें सभी भाइयों के साथ वन में भेजा जा सकता है। यही हमारे लिए विजय पाने का सरलतम तरीक़ा होगा।"

द्रोणाचार्य को चुप्पी साधे देख दुर्योधन कह बैठा—"आचार्यप्रवर! अगर मुझे यह मालूम होता कि मेरा वर माँगना आपको इतने गम्भीर चिन्तन में डाल देगा तो कदापि अपना मुँह न खोलता...।"

दुर्योधन को अपनी बात पूरी न करने दी आचार्य ने। बोले—"तुम सच कहते हो सुयोधन! बड़े उत्साह में आकर मैंने वरदान देने को कहा था, अब अपनी शक्ति आँक कर सावधान हो गया हूँ। लेकिन युधिष्ठिर को तुम्हारे सामने जीवित पकड़ कर लाने के लिए मैंने एक उपाय ढूँढ़ निकाला है। युधिष्ठिर के साथ परछाईं की तरह अर्जुन रहा करता है, वह अर्जुन जिसे युद्ध में देवता और असुर भी पराजित करने की क्षमता नहीं रखते। अगर तुम लोग अर्जुन को कुछ समय के लिए युधिष्ठिर से अलग कर सको, उसका वह रक्षा-कवच दूर कर सको तो बस समझो कि तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध हो गया। तब बन्दी युधिष्ठिर को तुम्हारे सामने प्रस्तुत करना मेरे बायें हाथ का खेल होगा।"

दुर्योधन ने कौरव-पक्ष में घोषणा करवा दी कि द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को बन्दी बनाने की प्रतिज्ञा की है। पाण्डव-शिविर में भी यह समाचार हवा के साथ-साथ पहुँच गया। इसे सुनते ही युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—"भाई, तुम युद्ध में मेरे समीप ही रहना।"

द्रोणाचार्य के महासेनापतित्व में होने वाला पहले दिन का संग्राम अत्यन्त भयंकर रहा। पाण्डव और कौरव दोनों पक्षों ने महान् पराक्रम दर्शाया और कौरव महारथी द्रोणाचार्य की रक्षा में जी-जान से जुटे हुए थे। परिणामस्वरूप युद्धभूमि महाश्मशान-भूमि बनती जा रही थी।

दोपहर ढल चुकी थी। अभी सूरज ढलने में कुछ देर थी और द्रोणाचार्य अपने लक्ष्य, अर्थात् युधिष्ठिर की ओर बढ़ रहे थे। युधिष्ठिर के आस-पास के सभी रक्षकों को पराजित कर वे ठीक उनके सम्मुख आ पहुँचे। उधर

अर्जुन विकट युद्ध में उलझ कर कुछ दूर हो गये थे। यह देख कर कौरवों की सेना में हर्षनाद उमड़ पड़ा। उनके हृदय में यह ख़ुशी समा न रही थी कि "अब आचार्य युधिष्ठिर को बन्दी बना कर हमारे महाराजाधिराज दुर्योधन को सौंप देंगे और हम युद्ध में विजयी हो जायेंगे।"

द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर को बाँधने के लिए धनुष पर नागपाश चढ़ाया नहीं कि दूसरी ओर से श्रीकृष्ण ने सहसा रथ मोड़ कर अर्जुन से कहा— "वत्स, जल्दी करो, आचार्य का वार काट दो।"

देखते-न-देखते द्रोणाचार्य का नागपाश दो टुकड़े हो गया। उन्होंने देखा, यह तो सव्यसाची अर्जुन का बाण है। वे अनायास पुकार उठे—"अरे, अर्जुन आ गया।" उनकी घोषणा सुन कौरव-सेना में आतंक छा गया। दूसरी ओर पाण्डव-सेना में भी किसी ने कहा, "अरे, अर्जुन आ गये।" और यह सुनते ही पाण्डव-सेना में उत्साह की लहरें दौड़ गयीं। भागते हुए सैनिक लौट पड़े और अस्त-व्यस्त पाण्डव-सेना जम कर लड़ने लगी।

सचमुच अर्जुन आ गये। सारथि श्रीकृष्ण ने नन्दिघोष रथ सीधा युधिष्ठिर की दिशा में हाँक दिया था और देखते-न-देखते अर्जुन ने वह संहार प्रारम्भ किया कि पृथ्वी शत्रुओं के शव से पट गयी। कौरव-सेना में त्राहि-त्राहि मच गयी। आचार्य द्रोण लक्ष्य के समीप पहुँच कर भी बहुत दूर जा छिटके। सूर्यास्त ने युद्ध बन्द करवा कर कौरवों को सुरक्षा प्रदान की।

रात के प्रथम प्रहर में अर्जुन अपने सखा-गुरु श्रीकृष्ण के पास जा बैठे। उन्हें प्रणाम कर, उनके कर-कमलों को हाथ में लेकर पूछ बैठे— "गोविन्द! द्रोणाचार्य पृथ्वी के किसी भी योद्धा से कम नहीं हैं। अजेयप्रायः हैं। वैसे भी युद्ध में जय-पराजय तो अनिश्चित रहती है। मैं जानना चाहता हूँ कि कल को अगर मैं किसी अमोघ अस्त्र से परलोक सिधार जाऊँ तो आप क्या करेंगे?"

गोविन्द ने अर्जुन के दोनों हाथों को अपने सीने में भींच कर कहा— "धनञ्जय! तुम भला ऐसा क्यों सोचते हो। मैं तुम्हारे साथ होऊँ और तुम पर कोई सांघातिक वार करे, ऐसा शूर न सृष्टि ने उत्पन्न किया है न कर सकेगी। वत्स, ऐसा कोई अस्त्र नहीं है जो मेरे इस वचन को अन्यथा कर सके। स्वयं भगवान् प्रलयंकर भी पिनाक लेकर आ जायें फिर भी मेरे प्राण-सखा अर्जुन को मारा नहीं जा सकता। वत्स! यह पृथ्वी रहे या टुकड़े-टुकड़े

हो जाये, लेकिन मेरे रहते तुम्हें मारने का कोई भी प्रयास सफल नहीं हो सकता।"

अर्जुन को रोमाञ्च हो आया। शब्द गले में अटक गये। बहुत प्रयास के बाद रुँधे गले से बोले—"जानता हूँ प्रभो! लेकिन फिर भी कभी-कभी अनहोनी भी घट जाती है। ऐसा हो जाये तो तुम क्या करोगे मेरी मृत्यु के पश्चात् सखा?"

भगवान् श्रीकृष्ण काँप उठे, उनका हृदय मानव की तरह धड़कने लगा, आँखें पसीज उठीं और आर्त स्वर में क्रन्दन-सा कर बैठे—"वत्स! यदि यह असम्भव कभी सम्भव हो जाये तो सृष्टि की सारी मर्यादाओं को मैं भंग कर दूँगा। तब मैं चक्र उठाऊँगा और किसी के भी वरदान एवं महास्त्र की मर्यादा की ज़रा भी चिन्ता किये बिना सम्पूर्ण कौरव-पक्ष को पलक झपकते नष्ट कर दूँगा। चाहे उनकी रक्षा करने सभी देवता या दानव उतर आयें, मेरा सुदर्शन चक्र उन सबको समाप्त कर देगा। सबका काम तमाम कर, युधिष्ठिर को सिंहासन पर बिठा कर उनका तिलक कर दूँगा..."

अर्जुन अवाक्, पत्थर की भाँति निस्पन्द खड़े रहे। श्रीकृष्ण उसी आवेग में बोलते रहे—"प्रिय, इतना सब करने के बाद अपने सखा के शरीर के साथ मैं स्वयं चितारोहण करूँगा। अर्जुन! कृष्ण की प्रतिज्ञा है कि वह तुमसे रहित पृथ्वी पर नहीं रहेगा, तुमसे पहले धरा का त्याग कर देगा। जहाँ अर्जुन नहीं वहाँ कृष्ण कदापि नहीं।"

अर्जुन ने श्रीकृष्ण के दोनों चरणों को अपने अंक में भर लिया और उनसे लिपट कर अपने अश्रुओं से उन्हें धोने लगे। उन पद्मलोचन का हृदय तो पहले ही पसीज उठा था। दोनों के शरीर एक-दूसरे के आँसुओं से अभिषिक्त हो रहे थे। इस पार्थिव दृश्य को देख कर धरती-आकाश रोमाञ्चित हो उठे। धरती से मूक वाणी ऊपर उठ रही थी, "भगवान् की महिमा हो तो ऐसी।" आकाश से देवताओं का असीस बरस रहा था, "सच्ची भक्ति की अनुपम झाँकी देखनी हो तो यह रही।"

भक्त और भगवान् के परम मिलन से धरती और आकाश भी सदा के लिए एकाकार हो गये।

'पुरोधा', फ़रवरी २००१ से —वन्दना

श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर, झुंझुनू

श्रीअरविन्द दिव्य जीवन शिक्षा-केन्द्र, झुंझुनू (राजस्थान)

श्रीअरविन्द सोसायटी द्वारा स्थापित इस संस्था का मूल उद्देश्य श्रीअरविन्द व श्रीमाँ के मनुष्य जाति के लिए दिव्य जीवन के स्वप्न को साकार करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह केन्द्र ऐसे श्रद्धालुओं के समूह के निर्माण की अभीप्सा रखता है जिनके जीवन का केवल यही उद्देश्य हो।

यह केन्द्र पूर्ण रूप से आवासीय है जिसमें छात्र-छात्राओं की शिक्षा, आवास व भोजन पूर्णतः निःशुल्क है। शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी है। शैक्षणिक सत्र हर वर्ष १५ अगस्त से प्रारम्भ होता है तथा केवल ६ से १२ वर्ष तक की आयु के बच्चों को ही प्रवेश दिया जाता है।

यह केन्द्र पूर्ण शिक्षा प्रदान करने तथा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए समस्त साधन प्रदान करने की अभीप्सा रखता है। जो अभिभावक अपने बच्चों के लिये सरकारी प्रमाण-पत्र, डिग्री व डिप्लोमा की आकांक्षा नहीं रखते अपितु उनकी सत्ता के केन्द्रीय सत्य के अनुरूप उनके पूर्ण व सर्वांगीण विकास की अभीप्सा रखते हैं और अपने बच्चों को इस शिक्षण-संस्था में प्रवेश दिलाने के इच्छुक हैं, वे पूरी सूचना के लिए निम्नलिखित पते पर सम्पर्क करें।

जो आध्यात्मिक पिपासु इस केन्द्र के कार्य में सहयोगी होना चाहते हैं तथा अपना जीवन इस कार्य में लगा कर साधनामय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, वे लोग अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

पंकज बगड़िया
श्रीअरविन्द डिवाइन लाइफ एजुकेशन सेन्टर
मीरा अम्बिका भवन, खेतान मोहल्ला
पो०-झुंझुनू—३३३००१ (राजस्थान)
टेलीफोन—(०१५९२) २३५६१५
टेलीफैक्स—२३७४२८
e-mail: sadlecjjn@rediffmail.com
URL: WWW.sadlec.org

जीवन के उन सब रूपों को, जो परिवर्तन को नहीं सह सकते, लुप्त हो जाना होगा, जो इसे सहन कर सकते हैं केवल वही जीवित बचे रहेंगे और आत्मा के राज्य में प्रवेश करेंगे। भागवत शक्ति कार्य कर रही है और वह हर क्षण चुनाव करेगी कि क्या करना है या क्या नहीं करना है, किसे क्षणिक या स्थायी रूप से ग्रहण करना है और किसे क्षणिक या स्थायी रूप से त्याग देना है।

श्रीअरविन्द

शुभ कामनाओं सहित

श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,

जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)

www.aurosocietyrajasthan.org

With best compliments from:

AURO MIRRA
INTERNATIONAL SCHOOL,

110, Gangadhar Chetty Road,
Ulsoor, Bangalore-560042
Email:accounts@auroschoolsulsoor.org
www.auroschoolsulsoor.org

AURO MIRRA CENTRE OF EDUCATION
An Integral School,
SSST Nagar, Patiala
E-mail: auromirrapta@gmail.com

SRI AUROBINDO
INTERNATIONAL SCHOOL
(A Senior Secondary School)
Sri Aurobindo Marg,
Rose Garden-Bus Stand, Patiala
E-mail: auroschoolpta@gmail.com

Date of Publication: 1st April 2023
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70